महाभारत पर आधारित उपन्यास
१२
रामकुमार 'भ्रमर'
अनन्त

अनन्त

श्रीकृष्ण समूचे कालखण्ड में
निरन्तर धर्म के ऐसे
उद्घोषक रहे हैं,
जो मनुष्य, सृष्टि और सत्य
के बीच चिरंतन और
शाश्वत सत्यों की व्याख्या
ही नहीं करते,
अपितु उसे अपने
कर्मयोगी जीवन से
सिद्ध भी कर देते हैं।
त्यागी, मोहहीन, पराक्रमी,
कर्मशील, ज्ञानी, समय-पुरुष
भगवान श्रीकृष्ण के
घटनापूर्ण जीवन की
ऐसी अद्भुत कहानी,
जिसे पढ़कर
मन-उपवन में
अपार-श्रद्धा के सुमन
खिल उठते हैं।
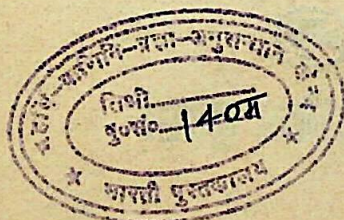
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

'हे, भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ—अर्थात् प्रकट करता हूँ।'

महाभारत पर आधारित उपन्यास : १२
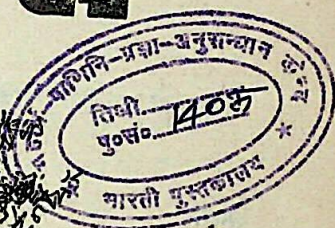
रामकुमार भ्रमर

अनन्त

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

अनन्त
(उपन्यास)

प्रथम संस्करण : १९८५

प्रकाशक
हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

मुद्रक
नागरी प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

ANANT
(Novel)
RAMKUMAR BHRAMAR

आदि-अन्त से हीन

श्रीकृष्ण का जीवन इतना वैविध्यपूर्ण और घटना प्रधान है कि उसे सम्पूर्णतः लिख पाना, फिल्माना या विवेचित कर देना केवल कलाधर्मी या लेखक, विचारक की धृष्टता हो सकती है—उसका पूर्णत्व नहीं। 'अनन्त' के लेखन-पूर्व यह बात मेरे मन में बहुत साफ थी और इसे अपने पाठकों के सामने सबसे पहले साफ कर देना जरूरी समझा है। यों भी इस उपन्यास में मैंने श्रीकृष्ण के कर्मयोगी जीवन का एक अंश भर छुआ है और वह भी केवल वही, जिसका सम्बन्ध कौरव-पांडव-कथा के बीच उनसे बनता है।

श्रीकृष्ण सम्पूर्ण कालखंड में निरन्तर धर्म के ऐसे उद्घोषक रहे हैं; जो मनुष्य, सृष्टि और सत्य के बीच चिरंतन और शाश्वत सम्बन्धों की व्याख्या ही नहीं करते, अपितु उसे अपने कर्मयोगी जीवन से सिद्ध भी कर देते हैं। पांडव पक्ष के साथ उनका होना और निरन्तर युधिष्ठिर को भरत-खंड का राजा बनाने की उनकी नीति केवल पांडवों से उनका सम्बन्ध या अर्जुन से अत्याधिक स्नेह अथवा मैत्री-सम्बन्ध भर नहीं है। उनके द्वारा पांडव पक्ष के समर्थन को उनके अपने शब्दों भर से नहीं, उनके जीवन की उन कुछेक घटनाओं को देखा-परखा जाना चाहिए, जिनके कारण उन्होंने वैसा निश्चय किया होगा। 'अनन्त' के अन्तर्गत उनके जीवन की सभी घटनाएं नहीं हैं, केवल वे घटनाएं हैं, जिनके कारण उन्होंने पांडव पक्ष का साथ देने, युधिष्ठिर को सम्राट बनाने का निर्णय लिया।

महाभारत के सभापर्व में अध्याय १४ के अन्तर्गत वह युधिष्ठिर से कहते हैं—"हे, पांडव !···आप में सब गुण हैं। आप बिना विरोध के

विशाल साम्राज्य भोग सकेंगे। क्षत्रियों के बीच आपका सम्राट होना अत्यन्त आवश्यक है…"(श्लोक-क्रम-६१ से ६२ के बीच)

वे कौन से कारण हैं, जिनके आधार पर त्यागी, मोहहीन, पराक्रमी, कर्मशील, ज्ञानी, समय-पुरुष के मन में यह बात जनमी या जागी होगी ? क्योंकर श्रीकृष्ण निरन्तर 'महाभारत कथा' में पांडवों के पक्षधर ही नहीं, उनके दूत भी बने हैं ?…

यह प्रश्न मेरे मन में उसी समय उठा था, जबकि मैंने संसार के सबसे बड़े समुद्रवत, ज्ञान-ग्रंथ पर थोड़ा बहुत लिखने का यत्न किया। मेरे मन में 'महाभारत' अध्ययन के दौरान निरन्तर यह बात उठती रही कि अपने जीवन काल में ही भगवान् रूप में स्वीकारे जाने वाले इस महापुरुष को बार-बार मैं पांडव-पक्ष की ही बात करते क्यों पाता हूं ?…युधिष्ठिर ही श्रेष्ठ राजा सिद्ध हो सकते हैं—श्रीकृष्ण ऐसा क्यों सोचते हैं ? या कि श्रीकृष्ण केवल हस्तिनापुर भर के लिए नहीं, युधिष्ठिर के अधीन सम्पूर्ण भरत-खंड के राजाओं का संयोजन क्यों करना चाहते हैं ?

'महाभारत' में इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सका। कौरवों, पांडवों और श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक पुस्तकें पढ़ लेने के बावजूद मुझे वह मूल बिन्दु नहीं मिला जो श्रीकृष्ण के पांडव पक्ष में होने की तार्किक धरती देता। कुछ नये सवालों ने माथे को कस लिया—क्या श्रीकृष्ण पांडवों के सहोदर हैं, इस नाते ही उनका शुभ सोचते हैं अथवा श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति अत्यधिक स्नेहशील हैं, इसलिए यह निर्णय कर बैठे हैं ? या कि श्रीकृष्ण, अर्जुन के साले हैं इसलिए इस तरह सोचने लगे हैं ? अथवा श्रीकृष्ण ऐसे चतुर बुद्धिजीवी हैं, जो सत्ताधीशों को अपने इशारों पर चलाना चाहते हैं और जानते हैं कि दुर्योधन उनके मनचाहे नहीं चल सकता, अतः अपने अनुयायी युधिष्ठिर को राजा बना देना चाहते हैं ?… क्योंकि वे पांडवों के पक्षधर ही नहीं—बहुविधि सहायक हुए हैं ?

बहुतेक प्रश्न थे, पर पुस्तकें भी उत्तरहीन, 'महाभारत' भी उत्तरहीन। मैंने श्रीकृष्ण के घटनापूर्ण जीवन का पुनः अध्ययन प्रारम्भ किया। अनायास ही मुझे लगा कि सागर की अनन्त लहरों जैसे श्रीकृष्ण के वैविध्यपूर्ण जीवन का एक अंश ऐसा है, जो सम्भवतः उन्हें पांडवों के बहुत पास

ही नहीं ले गया है, अपितु उसने उन्हें पांडवों का निरन्तर समर्थक और सहायक भी बना दिया है। यह संयोग नहीं है कि श्रीकृष्ण से पांडवों को मिले समर्थन-सहयोग का कारण वह दृष्टि बनी जो पांडवों से उनकी भेंट के पूर्व, उनके अपने अनुभव से जनमी थी। यह अनुभव संभवतः श्रीकृष्ण को उस समय हुआ होगा, जब वह उन्मत्त जरासंध की दुर्जेय शक्ति से मथुरावासियों की रक्षार्थ मथुरा से पलायन करके बलभद्र के साथ भारत के विभिन्न भागों में भागते रहे। इस दौड़-भाग में ही उन्होंने अद्भुत पराक्रम से सीमान्त प्रदेशों के बहुतेक राजाओं को तो परास्त किया ही, उन राज्यों को धर्मानुसार आचरण करने वाले राजा भी दिये। उस यात्रा में ही श्रीकृष्ण ने सागर-पार विभिन्न विदेशी जातियों से युद्ध भी किया, उनसे सीमा को मुक्ति भी दिलायी जो तत्कालीन भरत खंड में छुटपुट राजाओं के आपसी वैमनस्य या एकता हीनता के कारण सीमाओं पर पनप ही नहीं गये थे, बल्कि सैनिक शक्ति के साथ पैर भी जमा चुके थे। निश्चय ही इस दौरान श्रीकृष्ण के दूरदर्शी राजनयिक व्यक्तित्व में यह विचार पनपा होगा कि परस्पर-स्वार्थों में टकराते भरत-खंड को जुटाये रखने का एक मात्र साधन है—किसी एक सम्राट या केन्द्रीय शक्ति का जागरण, जिसके अधीन सभी राजा राज्य तो कर ही सकें, भरत-खंड भी सुरक्षित रहे। मेरे लिए श्रीकृष्ण से यह अलभ्य पहचान थी।

'अनन्त' के अन्तर्गत श्रीकृष्ण का केवल वही रूप मैंने देखने का प्रयत्न किया है। जिसने पहली बार राज्यों, स्वार्थों और छुटपुट युद्धों से परे एक भारत की कल्पना की। ईसा से सदियों पूर्व 'एकराष्ट्र' की यह कल्पना इस शब्दरूप में भले ही न हुई हो, किन्तु विचाररूप में उन्होंने ही दी है। यह निष्कर्ष मेरा अपना है।

श्रीकृष्ण का जीवन चमत्कारपूर्ण घटनाओं से भरा हुआ है। मात्र 'महाभारत' में ही नहीं, अनेक ग्रंथों में उन्हें ईश्वर स्वीकारा गया है। महर्षि वेदव्यास ने भी उनका वर्णन ईश्वर रूप में ही किया है। अपने समय-काल के महानतम ज्ञानियों, बुद्धिमानों, योगियों, तपस्वियों द्वारा उन्हें उनकी उपस्थिति में ही ईश्वर स्वीकारना उनकी अलौकिक शक्तियों का सबसे बड़ा प्रमाण है। जिस तरह की घटनाएं हैं और जिस आयु-खंड

में श्रीकृष्ण ने जो कुछ कर दिखाया है, वह निस्सन्देह अति मानवीय नहीं है। तर्क उन घटनाओं तक एकसीमा में ही पहुंच पाता है, उसके बाद सहसा श्रद्धा बनकर रह जाता है। यह भी कि वह उस कालखंड के एक मात्र चरित्र हैं, जिनका हर कदम अर्थयुक्त और उद्देश्यपूर्ण है। उनका असत्य, सत्य की सिद्धि लगता है, उनका पराक्रम अति मानवीय है, उनका ज्ञान तपस्या की उन असंख्य सूर्यकिरणों की तरह है जो जड़-चेतन में भेद किये बिना सदा ज्योतित हैं। कभी लगता है कि वह साध्य हैं, किसी बार मन कहता है कि वह सिद्धि हैं। उन्हें समझने की चेष्टा में सिद्धि और साध्य—अन्तरहीन हो जाते हैं। शेष रहते हैं केवल श्रीकृष्ण !···मन अनायास ही कृष्णमय हो उठता है—सिद्धि भी, साध्य भी।

श्रीकृष्ण पर, उनके जीवन की सम्पूर्ण घटनाएं संजोकर, लिखने के प्रयत्न में कुछ खंडों का एक वृहद उपन्यास बन सकता है। पाठक मित्र चाहेंगे, और उससे भी पहले यदि श्रीकृष्ण चाहेंगे तो वह लिखने का प्रयत्न भी करूंगा। फिलहाल यह खंड—आदि अन्त से हीन—उनके जीवन की असंख्य घटनाओं का अंशमात्र है, इसे पाठक इसी रूप में ग्रहण करें—मेरी विनम्र प्रार्थना है।

५३/१४, रामजस रोड, करौल बाग
नयी दिल्ली-११०००५

—रामकुमार भ्रमर

अनन्त

कृष्ण !…कृष्ण…!…कृष्ण !…

मन जिज्ञासा का समुद्र बन गया है। प्रश्न-लहरों से भरा आदि-अनन्त। कोई लहर एकान्त के किसी क्षण सहज-शान्त भाव से मस्तिष्क को सहलाती है और किसी बार तूफान की तरह वेग से टकराने लगती है। हर लहर एक प्रश्न का थपेड़ा देती हुई—कैसे होंगे कृष्ण ?

एक बार माता कुन्ती बोली थीं—"पुत्र !…कृष्ण बहुत मोहक हैं। बहुत शीतल। चांदनी की किरन जैसा।"

पर बहुत मिले हैं, जिन्होंने अर्जुन को बतलाया है—"यादव कृष्ण सूर्य की तरह उग्र हैं। उनका प्रताप सहना कठिन है !"

और कितने हैं जो कितनी-कितनी तरह कृष्ण को लेकर बहुत कुछ बतलाते-कहते रहे हैं ? कोई सत्य कहता है उन्हें—कोई छली। किसी की सम्मति है—कृष्ण अद्भुत है, अलौकिक ! और किसी ने उनके व्यक्तित्व में धूर्त खोज रखा है। किसी के लिए ग्वाला है कृष्ण —किसी के मन में रखवाला।

कुल मिलाकर कृष्ण क्या हैं ? कैसे हैं ? अर्जुन ही नहीं, बहुतों की गुत्थी बन गयी है। किसी के लिए भय बन गये हैं वह—किसी के लिए रक्षा। किसी की अशान्ति—बहुतों की शान्ति।

मन होता है उस लौकिक से मिलें—जो अलौकिक-सा वर्णित है। उस अलौकिक को देखें—जो पूर्णतः लौकिक है।

माथा भर गया है सुनते-सुनते। जितना सुनते हैं, मस्तिष्क में जगह न पाकर, मन में बूंद-बूंद रिसने लगता है। हृदय में पहुंचकर ऐसी हर बूंद

आधी बनकर मन को कभी मथुरा और कभी दूर पश्चिम दिशा में बसी द्वारकापुरी की ओर उड़ाने लगती है···आकाश में पुकारें फेंकती हुई—कृष्ण !···कृष्ण !···कृष्ण !···

और आज मन समय की तुलना में कुछ अधिक ही उड़ानें भरने लगा था। ब्राह्मण वेष में जब युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को साथ लिए द्रौपदी की स्वयंवर-सभा में पहुंचे, तब सुनने को मिला था—कृष्ण भी आये हैं वहां। उनके साथ हैं महाबली बलराम।

मत्स्य-भेद से पूर्व जब सौन्दर्यमयी कृष्णा को उनके भाई ने स्वयंवर में उपस्थित राजाओं के नाम-परिचय दिये, तब कृष्ण का नाम भी लिया था। अर्जुन हर ओर से दृष्टि उठाकर कृष्ण को ढूंढ़ने लगे थे, कौन हैं ? राजाओं की इस विशाल भीड़ में कौन से हैं देवकीसुत कृष्ण ?···

किन्तु देख नहीं सके उन्हें। देखा भी होगा तो सहसा दृष्टि टिक न सकी होगी। यह भी सम्भव है कि उस क्षण कृष्ण कहीं और रहे होंगे ? पर मन विचित्र-सी व्यग्रता से भर उठा था—जिस कृष्ण को लेकर इतना कुछ सुन-जान रखा है, उसे देख तो लें। बहुत चाह उठी थी मन में। देखकर चाह पायेंगे या नहीं—यह अलग बात।

किन्तु उस क्षण विचार भी नहीं किया था कि देखकर केवल चाहना बन जायेंगे। नाम, काम, व्यक्तित्व से परे केवल चाह ! पहले जानते होते तो देखते ही नहीं—कतरा जाते। ऐसे मिले, तब लगा जैसे स्वयं को भूल गये हैं—अंकगणित की गुत्थी बनकर रह गये। जिसका जोड़ का भी वही फल जो घटाने का होता है।

कृष्ण-कृष्ण सुनकर बहुत बार लगता था कि अर्जुन के भीतर एक शून्य रखा हुआ है। इस शून्य का निर्णय कैसे हो ? आदि है या अन्त ? भरा है या खाली।

सोचते थे—कृष्ण को देखें तभी इस शून्य से मुक्ति पा सकेंगे। बहुत खाली-खाली सोचते हैं तो भर जायेंगे। बहुत भरे हुए रहे होंगे तो खाली हो जायेंगे ! पर दर्शन तो करें उस विलक्षण का !···कौन से लक्षण हैं, जिन्होंने देवकीसुत को विलक्षण बनाया है ? या केवल विलक्षणता ही उनका लक्षण है !···

और जब मिले, तब लगा था कि अपने से ही मिले हैं। कुछ घबरा भी गये थे पहली-पहली बार। यह कृष्ण देह है या मन्त्र ! इस तरह मुग्ध कर लेना मन्त्रशक्ति से ही संभव है। डर भी अनुभव हुआ—हे भगवान ! ऐसे गुम क्यों होने लगे हैं अर्जुन ?···बहुत शक्ति से अपने आपको अपने ही में संजोये-सहेज रखने की चेष्टा की थी, पर क्षण के हर हजारवें हिस्से में लगने लगा था, जैसे या तो उस मन्त्र ने उन्हें स्वर की तरह अपने में विलीन कर लिया है, या उनके अपने भीतर वह मन्त्र शब्द बन कर रह गया है।

अविश्वसनीय !···अद्‌भुत !···अलौकिक !···

फिर से खींचने लगे थे अपने आपको। अपने ही भीतर से चेतावनी उकेरते हुए—"बचो अर्जुन !···तुम अर्जुन हो ! महावीर, व्रती धनंजय !···तुम्हारा अपना एक व्यक्तित्व भी है, अस्तित्व भी।"

पर अनुभव हुआ था कि उकेर कर अपने भीतर शब्द ही उगा सके अर्जुन। स्वर आत्म के भीतर गंध की तरह बिखर गया था, "नहीं अर्जुन !···तुम कृष्ण हो—कृष्णमय ! अब तुम्हारी शक्ति, साधना, तपस्या, कर्म-धर्म सभी कुछ केवल कृष्ण !···कृष्ण से इतर तुम कहीं नहीं !···"

अपने व्यक्तित्व को बर्फ की तरह गलकर धीमे-धीमे निर्झर-गति से कृष्ण के सागर-व्यक्तित्व में समाहित होते देखकर बेवसी में रो पड़ना चाहा था···पर आश्चर्य !···

रोना भी तो कृष्ण के वश जा पहुंचा है ?

रो भी न सके—कृष्ण मुस्कराकर जो देख रहे थे उन्हें ?···

स्वयंवर में युद्ध के लिए चुनौतियां फेंकते राजाओं का सामना करने के बाद वे सभी द्रौपदी को लेकर घर आये। दुर्योधन से बचाव के लिए कुम्हार के यहां शरण ली थी उन्होंने। पांचों भाई ब्राह्मण-वेष रखे हुए थे। द्रौपदी को कुन्ती स्नेहपूर्वक भीतरी हिस्से में ले गयी थीं और पांचों

कुछ समय के लिए शान्त भाव से बैठें रहे थे। तभी द्वार पर हल्की-सी आहट हुई थी।

आशंका से भरकर उन सभी ने एक-दूसरे को देखा था, फिर अर्जुन उठे—द्वार खोला। सामने पीताम्बरधारी तेजस्वी युवक खड़ा था। उसके साथ गौरवर्ण दीर्घकाय व्यक्ति। अर्जुन पूछना चाहते थे—"कौन हो तुम? क्या परिचय है तुम्हारा? और क्या चाहते हो?"

पर वह भी नहीं पूछ सके। होंठों पर आकर प्रश्न चिपका रह गया था—उससे भी कहीं अधिक गहरे चिपक कर रह गयी थी दृष्टि···वह युवक? सांवली, सुगठित देह-यष्टि, अलंकृत शरीर और भोली आंखें। लगा था कि धनंजय के मन-स्वर को इस युवक ने चुम्बक की तरह बांध लिया है।

परिचय—यह सरल, निश्छल मुसकान!···अर्जुन सहज हो सकें, इसके पूर्व ही शेष चारों भाई उनके पास आ खड़े हुए। सबकी आंखों में प्रश्न—"तुम्हारा परिचय?"

"मैं यदुश्रेष्ठ वसुदेव का पुत्र हूं कृष्ण और यह मेरे अग्रज—बलदेव।" श्रीकृष्ण ने बतलाया। स्वर ऐसा था जैसे लहरों को वायु ने चूमा था—सुननेवाले को झंकृत करता हुआ। अभी, वे सब स्तब्ध-से उन्हें देख ही रहे थे कि कृष्ण-बलराम तुरन्त झुके, युधिष्ठिर के चरण छू लिए।

"किन्तु···किन्तु तुमने हमें पहचाना कैसे भाई!" युधिष्ठिर के स्वर में प्रसन्नता थी।

कृष्ण हंसे—"अग्नि छिपती नहीं है राजन्! जो उसके प्रकाश को देख न सकें—उन्हें क्या कहा जायेगा?"

युधिष्ठिर ने कितना सुना, कितना अनसुना कर दिया, ज्ञात नहीं—वे हर्षोन्मत्त होकर पुकारने लगे थे—"माता! देखो तो कौन आये हैं?"

सब ने कृष्ण-बलराम को भीतर आने की राह दी। सावधानी की दृष्टि से नकुल ने द्वार बन्द कर लिया। अर्जुन अब भी मन्त्रमुग्ध देख रहे थे श्रीकृष्ण को। क्यों, किस कारण—स्वयं भी समझ में नहीं आ रहा था। जब सभी ने अपना-अपना आसन ग्रहण कर लिया, तब श्रीकृष्ण अर्जुन की ओर मुड़े—"कुन्तीसुत!···तुम्हें लेकर सदा ही बहुत कुछ सुनता था।

दर्शन करके सुख मिला।"

अर्जुन को लगा कि किसी ने उनके भीतर आनन्द की असंख्य तरंगें बिखरा दी हैं। सब मोहनीमन्त्र में बंधी हुईं। मिठास अनुभव करते हुए बुदबुदाए—"मैंने भी बहुत सुना था वासुदेव! और जितना सुना था, उससे कुछ अधिक ही।"

बात पूरी हो सके, तभी कुन्ती आ पहुंचीं—"अरे कृष्ण!······ बलभद्र!···"

दोनों भाई तुरन्त उठे। चरण छुए। कुन्ती ने उन्हें स्नेह से गले लगाया, फिर अंसुआयी दृष्टि चेहरों पर गड़ा दी, "देखो तो, तुम लोगों से भेंट भी हुई है, तो कहां? किस दशा में?···" सहसा वृद्धा का गला भर्रा गया था। बहुत थामना चाहकर भी आंसू छलक आये—"तुम्हें ठीक तरह भोजन कराने की भी सामर्थ्य नहीं है तुम्हारी बुआ में? वीर पाण्डव कुल-कलह की अग्नि में झुलसते जीवन-रक्षा करते यहां-वहां घूम रहे हैं···" बोलते-बोलते पृथ्वी पर बैठ गयी थीं वह। वातावरण सहसा बोझिल हो गया। पर अर्जुन ने देखा—कृष्ण उस तनाव में भी सहज हैं। उन्होंने कहा था—"सत्य सदा ही अग्नि-परीक्षा देता आया है बुआ!···यह कोई नयी बात नहीं है। नयी बात तो तब होगी जब यह सत्य ज्योतिकिरणों की तरह सम्पूर्ण सृष्टि में बिखर जायेगा!···तुम्हारे पराक्रमी पुत्र का यश उन्हीं किरणों की तरह बिखरेगा—शान्त हो!···"

अर्जुन को लगा कि ये शब्द नहीं—शक्ति में स्रोत की वह गति हैं, जो न बाढ़ के जल में होती है न अग्नि शिखा में!···क्षण भर पहले के कृष्ण से यह अलग कृष्ण थे—चन्द्र किरण से सहसा सूर्यतेज बने हुए!···एक और आश्चर्य ने छुआ था उन्हें—एक ही व्यक्तित्व में एक साथ विपरीत गुण-ग्रह कैसे समाये हुए हैं?···

युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव बहुत आशान्वित दृष्टि से वासुदेव को देख रहे थे। उस दृष्टि में विश्वास भी था, श्रद्धा भी। जितना स्नेह—उतना समर्पण। क्यों न हो? जब-जब कृष्ण को लेकर माता कुन्ती से बातें होती थीं, तब-तब यही कुछ तो कहती थीं वह—"वह बहुत स्नेहिल है युधिष्ठिर! नीति, शक्ति, गुण, ज्ञान से सम्पूर्ण! वह सदा ही हम सबका

स्मरण करता होगा, हमारे शुभार्थ किसी न किसी दिन अवश्य आयेगा !"

पर अनसुना कर देते थे पांडव। कृष्ण को लेकर बहुत कुछ तो सुनते रहे थे वे। तब से बहुत दिनों राह देखी थी कृष्ण की। यहां-वहां, सम्बन्धियों के मिल जाने पर कृष्ण को लेकर उत्सुकता भी प्रकट की थी—सोचते थे कि संभव है कृष्ण तक इसी तरह समाचार पहुंच जाये। जितना जो कुछ उन्हें लेकर सुना-जाना था, उसके अनुसार कृष्ण अलौकिक कथाओं के भंडार जैसे लगते थे। इस अलौकिकता में अनजाने ही पांडवों के भीतर एक विश्वास पनपने लगा था, कृष्ण की बुद्धि, योग्यता, शक्ति और ज्ञान का सहारा पाकर दुर्दान्त कौरवों पर जय प्राप्त की जा सकती है। वैसा न भी हो सका तो न्याय अवश्य ही मिल जायेगा।

पर किसी बार कृष्ण नहीं मिले, किसी संयोग या सूचना ने भी उन्हें पांडवों से नहीं मिलाया।

और जब मिलाया है तब।

"नहीं! वह स्वयं मिलने आये हैं!" युधिष्ठिर विचारते हुए उनकी ओर मुग्ध भाव से देखे जा रहे थे—मन ने कहा था—"निस्सन्देह! कृष्ण अद्‌भुत तो हैं ही। ऐसा न होता तो वह पांडवों को इस तरह कैसे पहचान लेते?"

याद आया, विदुर ने एक बार कहा था—"पांडुपुत्र! कृष्ण निःसन्देह अलौकिक हैं!···सर्वज्ञ! वह घटने से पहले घटना जान सकते हैं—और घटना के बाद तक देख पाने की सामर्थ्य है उनमें।"

वह दिन?

युधिष्ठिर ही नहीं, सभी को याद है—जब पहली-पहली बार कृष्ण को लेकर सुना था उन्होंने! किशोर कृष्ण और क्रूर कंस की संघर्ष-कथा। तब हस्तिनापुर में ही थे पांडव। सांझ का समय। आचार्य द्रोण के आश्रम से लौटे ही थे कि राजभवन में सनसनी की तरह सबके चेहरे देखे थे

उन्होंने। विस्मय, कौतूहल और बहुत कुछ अविश्वास से भरे हुए। सेवक चकित भाव से परस्पर फुसफुसा रहे थे। राजनिवास के द्वारपाल बड़बड़ाते-फुसफुसाते हुए, हंसते, गपशप करते चले आ रहे पांडवों को इस वातावरण में एक नयापन अनुभव हुआ था। विशेषकर उन फुसाफुसाहटों के आधे-अधूरे शब्द सुनकर।

एक बोला था—"अधिक आयु नहीं है उसकी। कहते हैं, यही कोई पन्द्रह सोलह का है।"[1]

"अविश्वसनीय!..." उत्तर में एक आतंकित स्वर उठा था।

युधिष्ठिर, भीम आदि ने एक-दूसरे को देखा—किसे लेकर बड़बड़ा रहे थे वह? और इस तरह चकित-बौखलाये हुए से? क्यों?

अगले द्वार पर फिर उन्होंने सेविकाओं को एकत्र देखा—चार-पांच थीं वे। पांडव चलते-चलते धीमे कदम चलने लगे। सुनना होगा—किसे लेकर कह-सुन रहे हैं वह।

"कंस तो बड़ा बली था, बहिन!...भला कैसे संभव है कि बालक ने उसे हत किया?"

"वही तो।" दूसरी ने उत्तर दिया था—"कहते हैं, है देवकी का पुत्र! किसी गोप (ग्वाले) के यहां छिपा रखा था देवकी-वसुदेव ने। वहीं से मथुरा पहुंचा था। साथ में उसका बड़ा भाई भी। वह भी विलक्षण है!"

"पर मुझे तो विश्वास नहीं होता!" कोई और आवाज़ उठी थी।

"इसीलिए तो सब व्यग्र हुए हैं—बहिन! विश्वास के योग्य बात ही कहां है? यह तो ईश्वर लीला हुई! जरासंध के जामाता को ऐसे किसी कीड़े-मकोड़े की तरह हत कर डाला बालक ने!"

"बालक कैसा है?"

---

१. श्रीकृष्ण द्वारा कंस को हत किये जाने की घटना को लेकर विभिन्न विद्वानों में उनकी आयु पर मत-मतान्तर हैं। किसी के अनुसार कृष्ण ने कंस को जब हत किया—वह १२ वर्ष के थे और किसी ने उनकी आयु १६ वर्ष कही है। बलराम, कृष्ण से १ वर्ष बड़े थे।

"वहीं तो देखना चाहते हैं सब ?" एक मुग्ध स्वर उठा था—"कैसा होगा वह ? मेरा तो मन ही भरने लगा है यह सोचकर।

इन आधी-अधूरी बातों में बहुत कुछ समझा—अधिकतर अनसमझा रहा। देवकी-वसुदेव के नाम ने चौंकाया था। माता कुन्ती से सुना था कि वसुदेव उनके भाई हैं। यादवों की वृष्णि वंशी शाखा के वसुदेव !

यह भी सुना था कि वसुदेव-देवकी बहुत कष्ट में हैं। मथुरा के अधिपति कंस ने उन्हें कारावास में डाल रखा है। बहुत अत्याचार हुए हैं उन पर। उनकी हर सन्तान को कंस नष्ट करता गया है ! बहुत क्रूर, निर्दयी और दुष्ट है कंस ! जिस पर जरासंध का जामाता !···और जरासंध भरत खण्ड की बहुत बड़ी शक्ति ! मगधराज !

युधिष्ठिर जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। बोले थे—"माता के पास चलें ?" आंख में जो भाव था उसने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सभी को समझा दिया, किसलिए सीधे कुन्ती के पास पहुंचना चाहते हैं ? उनके अपने भीतर भी तो उस विस्मयकारी घटना को आदि से अन्त तक सुनने की इच्छा बलवती हो उठी थी ?

सबने युधिष्ठिर का अनुसरण किया।

आसन पर बैठी कुन्ती की आंखें छलछलायी हुई थीं, किन्तु होंठों पर स्मिति। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि ने उनके कक्ष में प्रवेश करते ही आश्चर्य से देखा था, फिर आगे बढ़ते हुए ठिठक गए !

विचित्र वेदनापूर्ण प्रसन्नता थी कुन्ती के चेहरे पर ! पांचों ने पुनः कदम बढ़ाये। माता को प्रणाम किया, आशीष लिया और एक ओर बैठ रहे। कुछ प्रश्न करें या प्रश्न के लिए शब्द सहेज सकें, इसके पूर्व ही आहट ने ध्यान खींच लिया। सेविका ने सूचना दी थी—"देवी ! महात्मा विदुर, मथुरा से आये दूत के साथ भेंट की आज्ञा चाहते हैं।"

कुन्ती ने प्रसन्नमन कहा था—"आने दो उन्हें।" फिर पलकें पोंछीं—

द्वार की ओर दृष्टि गढ़ा दी।

विदुर ने प्रवेश किया। सभी बालक आदर के साथ उठ खड़े हुए। उन्हें बैठने का संकेत कर वह बोले थे—"भाभी! यह हैं वसुहोम! मथुरा महाराज उग्रसेन के दूत। कंस-वध का समाचार लेकर आये हैं।"

दूत ने प्रणाम किया। फिर कहा—"दुर्दांत कंस से यादवों को मुक्ति मिल गयी है पांडुपत्नी! देवकीसुत कृष्ण और रोहिणी के पुत्र बलराम ने मथुरा को आततायी शासन से मुक्ति दिला दी है। यादवश्रेष्ठ वसुदेव ने यही सन्देश देने के लिए मुझे आप तक पठाया है।"

"देवकी सुत कृष्ण?" चकित हो गयी थीं कुन्ती—"किन्तु दूत! भाभी की हर संतान को तो वह दुष्ट नष्ट करता गया था, फिर···?"

कुन्ती के शब्द पूरे हों, इसके पहले ही टोक दिया था वसुहोम ने। उसका अपना स्वर भी आनन्दातिरेक से छलक रहा था—"केवल कृष्ण को नष्ट नहीं कर सके थे मथुराधिपति कंस! ···उन्हें जन्म के तुरंत बाद ही गुप्त रूप से गोकुल में भेज दिया गया था। उसी भांति गुप्त रूप से रोहिणी देवी के पुत्र कर संकर्षण को भी वहां पठाया जा चुका था।"

"यह···यह सब कैसे हुआ दूत!" इस बार प्रश्न कुन्ती ने नहीं, समाचार सुनकर आनंदित हो रहे विदुर ने पूछा था—"आश्चर्य! दुर्दांत कंस के कारावास से जन्मे बालक को किस विधि से निकाला गया?"

"सुनाता हूं, महात्मन्! सब सुनाता हूं।" दूत ने कहा। सभी की दृष्टि विस्मय से उसकी ओर टिक गयी थी। पांचों पांडव, कौतूहल से भरे हुए उस विस्मय कथा को सुनने के लिए उतावले हो उठे।

दूत बोला था—"मैं उस सम्पूर्ण घटना का प्रत्यक्षदर्शी और स्वयं पात्र रहा हूं, शूरसुता! आज आपको वह सब सुनाता हूं। उसी रात्रि से सुनाता हूं, जब दुष्ट कंस ने अपने ही पितृ को शासन से च्युत किया था।"

कृष्ण को सामने पाकर वह सब आंखों के आगे दृश्यवत् उभरने लगा।

है, जो उस संध्या समय पर वसुहोम यादव से सुना था। वह भी क्या कम अविश्वसनीय और असहज था, जो वसुहोम ने कहा? तब छोटे थे पांडव, पर सभी कुछ इस तरह सुन रहे थे, जैसे कोई संस्कृति-कथा सुन रहे हों। विष्णु, शंकर या साक्षात् ब्रह्मा की ही कौतुक-कथा!

उस क्षण कृष्ण की जो छवि उभरी थी, वह भी उतनी तेजस्वी और असामान्य नहीं लगी थी, जितनी आज लग रही है? युधिष्ठिर ही नहीं, वे सब कृष्ण-बलराम को टकटकी लगाये देखे जा रहे थे। कानों में गूंज रही थी—कृष्ण-चर्चा की वह पहली कहानी।

वसुहोम के होंठों से झरी और पांडवों के मन की तूलिका से चित्रित होकर मस्तिष्क पर अंकित हुई कहानी। कैसा रहा होगा कंस? इसका भी एक चित्र बना था मानस में और फिर सब चित्रवत् अंकित होता गया था…

वसुहोम प्रतिदिन की तरह मथुरा के राजा उग्रसेन तक संदेश लेकर जा रहे थे। मंत्री वसुदेव उन्हें हर रात्रि, शैया पर पहुंचने के पूर्व समूचे दिन की राजकीय गतिविधियों के गुप्त समाचार वसुहोम के माध्यम से ही भेजा करते थे। उस दिन भी यही क्रम था।

किन्तु राजमहल में प्रवेश करते ही लगा था कि कुछ है, जो बदल गया है, पर क्या? यह समझ से बाहर था। द्वारपालों ने रोका नहीं था उन्हें। सब जानते थे वसुहोम को। सीधे, सरल सेवक के रूप में प्रसिद्ध थे वे। वही सबने देखा था। महाराज उग्रसेन और वसुदेव के बीच वे सम्पर्क के सबसे महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। किसी को कल्पना तक न थी। राजा और मंत्री ने बड़ी योजना और सावधानी से वसुहोम को अति-महत्त्वपूर्ण रखते हुए भी अति-साधारण रूप में जन-मानस ही नहीं अन्य राजा-सरदारों तक भी घुलामिला रहने दिया था। साधारण सेवक का यह चोला, राजनीति में बहुत काम आता था।

निर्वाध चले गये थे बसुहोम—पर माथा ठनकता हुआ। वातावरण बदला-बदला क्यों लग रहा है?

और फिर जैसे खोज लिया था कारण—प्रतिदिनि मुख्य राजनिवास के द्वार पर जो सैनिक मिला करते थे, वे कहां हैं? जो मिले हैं, सब नये चेहरे! यह परिवर्तन अचानक कैसे हुआ? और यही क्यों? आगे भी अनेक द्वारों पर सभी जगह बदले हुए व्यक्ति पाए उन्होंने। तीव्र गति सहसा मंद पड़ गयी थी। सहज, शांत मस्तिष्क अचानक सक्रिय हो उठा!

अभी अगला कदम बढ़े कि उन्होंने महाराज उग्रसेन के कक्ष में कुछ शोर अनुभव किया। दबे कदम आगे बढ़े, फिर दृष्टि कक्ष के झरोखों पर जड़ी जाली में गड़ा दी। भय और अविश्वास से आंखें फैली रह गयी थीं वसुहोम की। लगा था कि गला सूख गया है, रक्तचाप तीव्र। होंठ अनायास ही बुदबुदा उठे थे—"हे भगवान्! यह क्या?"

महाराज उग्रसेन को दो सैनिकों ने थाम रखा था। उनके चेहरे पर अविश्वास और आश्चर्य था। बौखलाये हुए से प्रश्न कर रहे थे—"यह... यह क्या अशिष्टता है? कौन हो तुम लोग?"

"क्षमा करें, देव!" एक सैनिक ने कहा था—"युवराज की आज्ञा हुई है। आप शासन के योग्य नहीं रहे। अतः आपको ससम्मान कारावास में पहुंचा दिया जाये!"

"दुष्ट!...नीच!...तेरा यह दुस्साहस?" चीख पड़े थे राजा। क्रोध और आवेश ने सारे शरीर का लहू जैसे उनके चेहरे पर खींच लिया था। आंखें सुलग रही थीं—"जानते हो, मेरे संकेत मात्र से तुम दोनों के शीश धरती पर जा गिरेंगे?" वह गुर्रा रहे थे।

"क्षमा करें राजन्!" सैनिक ने उन्हें लगभग घसीटते हुए उत्तर दिया था—"सम्पूर्ण राजनिवास ही नहीं, राज्य की सीमाओं तक सभी सैनिक, द्वारपाल और सेना नायक बदले जा चुके हैं! आपके अनेक समर्थक अब तक कारावास पहुंच चुके होंगे। आपकी हर चेष्टा अब व्यर्थ है राजन्! चलिए! हमें बाध्य मत कीजिए कि युवराज की आज्ञानुसार हम आपको शक्तिपूर्वक कारावास तक ले जाएं!

"किन्तु...।" वसुहोम की थरथराती दृष्टि ने देखा था—राजा उग्रसेन का विरोध केवल निराश झल्लाहट बनकर रह गया है—"युवराज! नीच, पितृघाती सिद्ध हुआ।" आगे कुछ कहें, या कुछ घटे—इसकी प्रतीक्षा किये बिना तीव्रगति से लौट पड़ा था वसुहोम। सहमा, घबराया हुआ और व्यग्र! यह समाचार तुरंत महामंत्री वसुदेव तक पहुंचना आवश्यक!

हर द्वार, हर सैनिक के सामने से इस तरह सहज होकर निकला था वह, जैसे उसे कुछ ज्ञात ही न हो अथवा वह उस सारे ही परिवर्तन में जुड़ा हो। उस परिवर्तन का ही अंश!

वसुहोम राजनिवास से बाहर निकलते ही तीव्रगति से लपका था वसुदेव के निवास की ओर।

किन्तु निवास पर पहुंचते ही पुनः ठिठक जाना पड़ा। द्वार पर अनेक सैनिक देखे थे उसने। थूक का घूंट निगलकर पूछ लिया था, "क्या बात

है ?"

"युवराज महामंत्री से भेंट के लिए पधारे हैं।" एक सैनिक ने बतलाया।

वसुहोम अचकचाया हुआ-सा खड़ा रहा, फिर आगे बढ़ने को हुआ, तो सैनिक ने रोक दिया था उसे—"क्षमा करना वसुहोम! तुम्हें कुछ समय यहीं प्रतीक्षा करनी होगी।"

भयग्रस्त, चिन्तित वसुहोम चुपचाप एक ओर खड़ा रह गया।

थोड़ी देर बाद विशाल देहयष्टि वाले युवराज कंस गौरवांवित चाल में बाहर निकले। उनके गिर्द अंगरक्षक थे। वसुहोम की ओर देखा तक नहीं था उन्होंने, रथारूढ़ हो रहे।

वसुदेव तक पहुंचने के पूर्व हृदय की असंतुलित होती जाती धड़कनों को जैसे-तैसे सहेजता हुआ वसुहोम खड़ा-खड़ा कंस और उसके सैनिकों की रवानगी देखता रहा, फिर लगभग दौड़ता हुआ भीतर पहुंचा।

वसुदेव अपने कक्ष में थे। निराश, थके हुए, चिन्तित और व्यग्र! आसन पर बैठे हुए दोनों हाथों में माथा थामे हुए थे वह।

कांपता हुआ वसुहोम उनके सामने जा खड़ा हुआ। उसका चेहरा, माथा, गला सभी पसीने से नहा गये थे।

वसुदेव ने सिर उठाया, एक गहरी सांस ली, बोले—"जानता हूं वसुहोम! तुमने राजनिवास में क्या देखा होगा?"

एक बार पुनः थूक का घूंट निगलना पड़ा था उसे। लगता था कि शब्द बार-बार गले में अटक जाते हैं। तेज प्यास अनुभव की थी उसने। जैसे-तैसे बोल सका—"अब क्या होगा, देव!"

"इस समय कुछ नहीं हो सकता!" वसुदेव ने उत्तर दिया था—"युवराज का कल तिलक होगा। मथुरा के नये अधिपति! यादव संघ के नये प्रमुख!"

"किन्तु मंत्रिवर! युवराज कंस अति-क्रोधी और हिंसाप्रिय हैं।" वसुहोम के स्वर में चिन्ता थी—"मथुरा का राज्य अब यदि संकट में नहीं है, तो दूसरों के लिए अवश्य संकट बन सकता है!"

उपेक्षा से हंसे वसुदेव। वसुहोम ने देखा—उनके चेहरे पर निराशा से अधिक विकृति थी—"अब मथुरा ही नहीं, सम्पूर्ण गणसंघ शान्ति और व्यवस्था की नहीं, अशान्ति और अराजकता की आराधना करेंगे!" एक पल के लिए चुप हो रहे थे वसुदेव। उठे, चहलकदमी करने लगे—"आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही कोई-न-कोई युद्ध हो जाये! हम यादवगण किसी पर नाश-वर्षा करें अथवा स्वयं नाश की वीभत्सता को सहें।"

"तब···?"

"तब क्या···? कुछ नहीं!"

एक पल के लिए चुप्पी बिखर गयी थी, फिर वसुहोम ने सरलता से कहा था, "मैं तो बहुत डर गया था मंत्रिवर!"[1]

"क्यों?"

"कहीं महाराज की तरह आपको भी कंस कारावास में···।"

हंसे वसुदेव। बात अधूरी ही रह गयी वसुहोम की। भौंचक्का-सा मंत्री का चेहरा देखने लगा। कुछ क्षण बाद वसुदेव ने शान्त स्वर में उत्तर दिया था—"वह आये तो इसी अभिप्राय से थे, किन्तु इस समय उन्होंने धैर्य से काम लिया। संभवतः उन्होंने विचार किया कि तुरंत महामंत्रिपद स्वीकारने योग्य उनके पास कोई प्रभावी व्यक्ति नहीं है। अतः मैं स्वतंत्र

---

१. वसुदेव, राजा शूरसेन के पुत्र थे। मथुरा शूरसेन जनपद के अन्तर्गत ही आता था। शूरसेन को राजा कहा गया है, किन्तु वसुदेव राजा थे या नहीं, इस तरह का कोई संकेत नहीं मिलता। इतना अवश्य संकेत आता है कि यादव संघ की राजनीति में वसुदेव अत्यन्त प्रभावशाली पुरुष थे। आचार्य चतुरसेन ने वसुदेव को अन्धक वंश के राज्याभिषिक्त कुल में हुए राजा उग्रसेन का महामन्त्री कहा है।

'महाभारत' के अनुसार वसुदेव की पत्नियां बतलायी गयी है—भद्रा, रोहिणी, मदिरा और देवकी। चतुरसेन ने वसुदेव की पत्नियों की संख्या आठ कही है और श्रीकृष्ण की माता रोहिण को उनकी आठवीं पत्नी बतलाया है।

छोड़ दिया गया हूं ।"

"तब क्या आप कंस के भी महामंत्री बनेंगे ?" चकित होकर वसुहोम ने पूछा। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि पल-पल राजा उग्रसेन के प्रति समर्पित रहे, यादव वसुदेव इतनी शीघ्र बदल सकते हैं ? ऐसी कायरता उनके मन में आ सकती है ?

"नीतियुक्त यही था वसुहोम ।" वह बोले थे—कंस ने बड़ी संख्या में यादव सामंतों को अपनी ओर कर लिया है। सेना भी उनके प्रभाव में है; अतः इस समय यही उचित था कि मैं उनकी हां-में-हां मिलाऊं। मैंने कंस के अधीन महामंत्री रहना स्वीकार कर लिया है।"

वसुहोम अधिक गहरे तक नहीं समझ सका था, किन्तु जितना समझा, उससे मन की शंका टूटी थी। वसुदेव निश्चय ही कोई चपल राजनीतिक जाल बुन रहे होंगे। मन शान्त हुआ था।

वसुहोम कुछ पूछे, तभी महामंत्री बोले थे—"इस समय तुम जाओ, मुझे विचार करने दो ! ···"

अभिवादन करके वसुहोम लौट आया था अपने निवास पर। देर तक सो नहीं सका था। वसुदेव युवा थे—पर अपनी तीव्र बुद्धि और शान्त-चित्तता के कारण उन्हें मथुरा का महामन्त्री बनाया गया था। यों भी शूर-सेन जनपद के वह भाग्यविधाता कहे जाते थे। शूरसेन के पुत्र थे वह। बहिन कुन्ती महान कुरुवंश में राजा पांडु के साथ ब्याही थी।

वसुहोम का मन कहता था कि आगे-पीछे तीव्र बुद्धि महामन्त्री कुछ ऐसा अवश्य कर सकेंगे, जिससे मथुरा के शासन को कंस से मुक्ति मिले··· पर कैसे करेंगे ? कौन जाने ? यही विचार कर वसुहोम निश्चिन्त हुआ था।

अगले दिन मथुरा इस तरह सजायी गयी थी जैसे नगर का पुनर्जन्म हुआ हो ।युवराज कंस ने समूची शक्ति-सत्ता अपने हाथ में लेकर जनपद में

घोषणा करवा दी थी—"महाराज उग्रसेन ने अपने पुत्र कंस को उत्तराधिकार सौंप दिया है !" राजतिलक की तिथि निश्चित हुई।

वसुदेव ने स्वयं अपने हस्ताक्षरों से वह राजाज्ञा प्रसारित करवायी। ऐसे जैसे किसी यन्त्र ने कार्य किया हो, फिर प्रमुख नगरों तक स्वयं ही इस राज्यसूचना का प्रसारण करवाने गये। वसुहोम साथ रहा। वह उनका विश्वसनीय सेवक था। इस यात्रा में वसुदेव अनेक जनपद क्षेत्रों में प्रभावशाली व्यक्तियों से मिले-जुले, गोपनीय चर्चाएं कीं। वसुहोम जान रहा था—अवश्य ही वसुदेव महाराज उग्रसेन के शुभार्थ किसी राजनीतिक चक्र के आयोजन में सक्रिय हुए हैं। जल्दी ही राजतिलक भी हो गया।

पर राजनीति-चक्र कंस भी आयोजित कर रहा था। चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल से उसकी मैत्री थी। शिशुपाल, मगधराज जरासन्ध के विश्वसनीय लोगों में से था। यह सम्बन्ध अनायास ही सही, पर मथुराधिपति कंस को अपरोक्ष रूप से सुरक्षित बनाए हुए था। इसी राजनीति-चक्र ने एक और नया मोहरा खेला। एक दिन अचानक वसुहोम को ज्ञात हुआ कि महामंत्री वसुदेव, अब महाराज कंस के संबंधी बन रहे हैं! वसुहोम को लगा था कि इस सम्बन्ध के बाद कारागृह में पड़े उग्रसेन की मुक्ति आशा धूमिल हो गयी है। मन को अच्छा नहीं लगा था वह सब···पर अवश था वसुहोम। वह साधारण व्यक्ति! सामन्तों के संसार में उसकी कितनी सीमा और कितनी पैठ? अपनी क्षमता से खूब जानकार था वह। उसकी नियति केवल सेवा!

मथुरा का राजनीति-चक्र तीव्र गति से घूमा। इतना तीव्र कि एक बार पुनः राजघोषणा हुई—महाराज कंस अपने पितृबन्धु देवक की कन्या देवकी का सम्बन्ध यादवश्रेष्ठ वसुदेव से कर रहे हैं! प्रजाजन प्रसन्न हों!

और फिर हुआ वह भव्य समारोह! वासुदेव और देवकी दाम्पत्य सूत्र में बंधे। वसुहोम को प्रसन्नता ही हुई थी, पर कभी-कभी स्मरण आता—महाराज उग्रसेन को किस दुष्टतापूर्वक उद्दंड कंस ने कारागृह में डाला था। यही क्यों, कंस के सैनिक किस क्रूरता और पशुता से सामान्य जनों के साथ व्यवहार किया करते थे।

मथुरा की राजनीतिक उठा-पटक इसी तरह चल रही थी—कि विस्फोट की तरह वह घटना घटी, जिसने मथुरा ही नहीं, वृष्णि, अन्धक,

भोज वंशीय सभी यादवों का जीवनचक्र ही बदल दिया !

विवाह के तुरन्त बाद की बात है। वर-वधू हवन-वेदी से उठे ही थे कि सेवक ने समारोह में उपस्थित सभी लोगों को सूचना दी थी—"सावधान हों और ध्यान लगाकर सुनें ! मथुराधिपति महाराज कंस अपने प्रिय महामन्त्री और राजसुता देवकी के नवविवाहित जोड़े को ले जानेवाला रथ स्वयं संचालित करेंगे।"

"धन्य ! धन्य हैं, महाराज का भगिनी स्नेह !" बन्दीजनों ने स्तुतियां कीं, वाद्ययंत्र बजे। सबने प्रसन्नता और उल्लास प्रकट किया।

राजनिवास से वर-वधू की विदा पूर्व वे एकान्त कक्ष में पहुंचा दिए गए थे। उन्हें उनके निवास तक पहुंचाने के लिए विशेष रथ तैयार किया जा रहा था। महाराज कंस स्वयं सारथी बनने वाले थे। वसुहोम विशाल मंडप में एक ओर खड़ा था, तभी एक बालक ने कहा था—"तुम···तुम वसुहोम ही हो ना ?"

"हां···।" वसुहोम चकित हुआ—"क्या बात है ?"

"वरदेवता स्मरण कर रहे हैं तुम्हें—तुरंत चलो !" बालक ने सूचना दी। वसुहोम चकित हुआ, फिर चुपचाप चल पड़ा। मन में प्रश्न—इस अवसर पर ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा महामंत्री को ?

वसुहोम को बालक के साथ आया पाकर दिव्य आसन पर बैठे वसुदेव फुर्ती से उठकर उसके पास आ गये थे। उनके चेहरे पर सतर्कता और चपलता दीख रही थी। चौकन्नेपन से चारों ओर देखकर फुसफुसाये थे—"सुनो, वसुहोम ! मैं तुम्हें अभी, सार्वजनिक तौर पर सभी के सामने अपमानित करनेवाला हूं।"

वसुहोम हड़बड़ाया, "किन्तु मेरा दोष क्या है देव ?"

वसुदेव कुछ चिढ़कर बोले—"पहले पूरी बात सुन लो। मैं जो भी व्यवहार करूंगा, वह नकली होगा। तुम शान्त रहना, बस ! फिर तुम्हें

कुछ समय तक मुझसे अलग रहकर महाराज कंस की स्तुति और भांति-भांति से प्रशंसा करते रहना होगा। तुम मुझसे यदा-कदा मिलते भी रहोगे। प्रयत्न करोगे कि तुम्हें कोई न देखे, समझे ?"

"जी, किन्तु…"

"सुनते जाओ। अधिक समय नहीं है मेरे पास !" वसुदेव बोले थे—"मथुरा शीघ्र ही कंस से मुक्त हो सके, इसकी सभी व्यवस्था हुई जा रही है। मैं चाहता हूं कि तुम मुझसे उपेक्षित होकर राजा के विश्वसनीय बनो। उन तक पहुंचकर मुझे सभी समाचार तुम्हारे माध्यम से मिलते रह सकेंगे, समझे !"

पल भर में सब कुछ समझ गया था वसुहोम। श्रद्धा से वसुदेव को देखा था उसने। आंखें भर आयी थीं। अब भी वसुदेव वही थे, जो उग्रसेन और मथुरा के लिए सदा रहे थे। वसुहोम उन्हें समझ नहीं सका था, बस, श्रद्धा से सिर झुका दिया था उसने—"जैसी आपकी आज्ञा, देव !"

निश्चिन्तता का गहरा श्वास लेकर वसुदेव पुनः एक ओर बैठी नव-वधू के पास जा पहुंचे।

वसुहोम वापिस हुआ। यह योजनाबद्ध रूप से उस रथ के पास जा खड़ा हुआ, जहां वर-वधू को ले जानेवाला रथ तैयार हो चुका था।

अभी कुछ पल बीते होंगे, वाद्ययंत्रों की ध्वनियां तीव्र हुईं। वसुहोम ने देखा—राजकुल की स्त्रियों, सेविकाओं से घिरी देवकी और वसुदेव रथ की ओर आ रहे हैं। यहां-वहां से उन पर पुष्पवर्षा हो रही थी। धूप-नैवेद्य की तीव्र सुगन्ध वातावरण को नहलाये हुए थी। वसुहोम मुग्धभाव से जोड़े को देखता रहा था और फिर पधारे महाराज कंस। सभी ने जय-जयकार कर राजा की प्रसंशा-स्तुति की।

रथ पर नव-दम्पती सवार होने लगे कि वसुहोम, महामंत्री के सामने आ खड़ा हुआ। महाराज कंस विशाल रथ के संचालनार्थ सारथी के स्थान पर पहुंच गये थे। सहसा बड़े नाटकीय ढंग से वसुदेव की भृकुटियां चढ़ी थीं। विद्युतगति से आगे बढ़कर उन्होंने वसुहोम के चेहरे पर एक तमाचा जड़ दिया था। इतनी जोर से कि वसुहोम के होंठों से एक चीख बाहर निकल आयी !

सब हक्के-बक्के रह गये। वातावरण अनायास की बदल गया। क्या हुआ, जिस कारण वसुदेव अपने विश्वसनीय व्यक्ति पर इतने प्रसन्न हुए ? भौंचक्के से सब देख ही रहे थे कि चीखकर वसुदेव बोले थे—"दुष्ट ! तूने क्या विचारकर मेरे बारे में धृष्टतापूर्ण बातें कही थीं ? क्या तुझे यह ज्ञात नहीं कि मथुराधिपति कंस के महामंत्री अनेक कानों से सुनते हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं रह सकता ?"

महाराज कंस असमंजस की स्थिति में प्रश्न कर बैठे थे—"क्या हुआ वसुदेव !"

"राजन !" वसुदेव उसी तरह गुस्से से तिलमिलाते हुए बड़बड़ाये थे—"इस भोले लगनेवाले धृष्ट व्यक्ति ने मुझे लांछित किया कि मैं एक धूर्त व्यक्ति हूं, जो मथुरा की सत्ता पर अधिकार करने के लिए राजकुमारी देवकी से विवाह कर रहा हूं, जिस व्यक्ति से इसने यह सब कहा, वह स्वयं मेरे पास आकर मुझसे कह गया। इस नीच को संभवतः यह ज्ञात नहीं था मथुराधिपति। जिस व्यक्ति से यह सब कुछ बक रहा था, वह मेरा अत्यधिक विश्वसनीय व्यक्ति है।" फिर वसुदेव पुनः मुड़े थे वसुहोम की ओर—"बोल धूर्त ! क्या यह सत्य नहीं है ?"

"मंत्रिवर ! मैं—मैंने यह कहा था...।" वसुदेव से भी अधिक नाटकीय हो गया था वसुहोम, "किन्तु...किन्तु मैंने यही कुछ चर्चा सुनी थी जनपद में, इसीलिए दोषवश मेरे मुंह से यह निकल गया। मुझे—मुझे क्षमा कर दें देव।" वह रोने लगा था।

"जा, दूर हो जा मेरे सामने से।" वसुदेव ने घृणा के साथ कहा था, फिर रथ की ओर मुड़े।

सभी ओर फुसफुसाहटें बिखर गयी थीं, फिर धिक्कार पड़ने लगे थे वसुहोम पर। अनेक यादव तो उसे मारने-पीटने पर उतारू हो गये थे, किन्तु कंस ने शांत कर दिया था उन्हें। वसुहोम को आज्ञा दी थी—"वसुहोम ! तुम मेरे वापिस होने तक यहीं रुकोगे।" वह पुनः सारथी के स्थान पर जा पहुंचे।

अगले ही क्षण रथ तीव्रगति से वसुदेव के निवास की ओर लपक पड़ा था।

वसुहोम नहीं जानता था, आगे क्या होगा ? जानने की इच्छा भी नहीं की थी उसने। जो करना होगा, वसुदेव करेंगे। अगला विचार-विषय उनका। वह एकान्त कक्ष में जा बैठा था। महाराज कंस की प्रतीक्षा करनी होगी, उनका आदेश जो हुआ है।

राजकुल की चहल-पहल हलकी होने लगी थी। देवक की कन्या पति-गृह गयी। विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ।

और तभी हुआ था विस्फोट।

कक्ष में बैठे वसुहोम को अचानक थप्पड़ों के एक लगातार सिलसिले की तरह वह समाचार ज्ञात हुआ था।

नव-विवाहित वसुदेव-देवकी को कंस ने मार्ग में ही कारागृह के भीतर डाल दिया है। पहली-पहली बार सुना तो विश्वास नहीं हुआ था। हे भगवान ! क्या यह संभव है ? न-न, निश्चित ही झूठ है। किसी धूर्त ने अकारण ही आनन्द को पीड़ा में बदलने के लिए यह दुष्प्रचार किया है। शेष रही चहल-पहल सहसा सन्नाटे से जुड़ने लगी थी और एक पहर बीतते-न-बीतते सन्नाटा ही बनकर रह गयी थी। अनेक लोगों ने यही कुछ कहा, यही कुछ सब ओर चर्चित, यही कुछ सुना जाता हुआ। वसुहोम की समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे क्या हुआ ? कुछ समय पूर्व महामंत्री जिस चौपड़ पर चाल जीत रहे थे; अचानक हार गये। कैसे ?

मन रह-रहकर अविश्वास से भर उठता है।

पर यह हुआ है। पता चला कि क्रोधित मथुराधिपति कंस अभी, कुछ समय पूर्व ही उन्हें कारागृह में बन्द करके लौट आए हैं। बहुत उद्विग्न और खिन्न मन।

देर तक वसुहोम को बुलावा ही नहीं हुआ था महाराज कंस की ओर से वह सहमा, डरा हुआ-सा उस पल की प्रतीक्षा करता रहा था, जिस पल प्रतिहारी उसे बुलाने आ पहुंचेगा।

रात्रि गहरी होती जा रही थी। जैसे-जैसे अन्धकार बढ़ रहा था, वैसे-वैसे वसुहोम के मन में आशंकाएं गहराती जा रही थीं। रह-रहकर सोच उठता—वे कौन से कारण रहे होंगे, जिन्होंने महामन्त्री वसुदेव और देवकी को मधुरमिलन की पहली रात्रि में ही कारागार पहुंचा दिया ?

या कंस पहले से ही यह सब कुछ आयोजित किए बैठे थे ? पर पहले वैसा कुछ हुआ होता तो कंस सार्वजनिक रूप से भी वसुदेव को कारावास में भेज सकते थे। उस सबके लिए उतनी नाटकीयता की क्या आवश्यकता थी उन्हें ?

नहीं ! मन ने दबाव के साथ कहा था—"कारण कुछ और ही रहे होंगे ! बहुत गंभीर ! कंस ने अपनी ही पितृबन्धु की बेटी के पति को यदि कारावास में डाला है तो कारण छोटा-मोटा नहीं हो सकता ।

युधिष्ठिर को स्मरण है वसुहोम को कुन्ती ने सहसा ही टोक दिया था—"ऐसा क्या कारण हुआ था वसुहोम ! निर्दोष दम्पत्ति के जीवन को किस कारण दुष्ट कंस ने नर्क में झोंका ?"

वसुहोम होंठों पर जीभ फिरा रहा था, जैसे विगत उसके भीतर अग्नि की लपट की तरह कौंधकर लहू सुखा गया हो । वे सभी बौखलाये हुए से बैठे थे। कैसा दुष्ट रहा होगा कंस ? पांडुपुत्रों के किशोर मन पीड़ा से भर उठे थे।

वसुहोम ने कहा था—"बहुत बाद में ज्ञात हुआ था देवी ! कारण था, ऐसा कारण था; जिसने कंस की क्रूरता को पाशविकता में बदल डाला।"

और फिर कारण बतलाया था वसुहोम ने। उसे स्वयं भी तो बहुत बाद में ज्ञात हुआ था कारण और वह भी स्वयं वसुदेव-देवकी से।

उन सभी ने एक बार पुनः ध्यान से वसुदेव की कहानी सुननी प्रारम्भ कर दी थी। वसुदेव और देवकी से ही कारण सुनने मिला था वसुहोम को ? और तब जब कि वे कारागृह में जा चुके थे ?

भला वसुहोम, उन तक किस तरह पहुंच चुका होगा ? युधिष्ठिर के किशोर किन्तु सतर्क मन में प्रश्न उठा था।

वसुहोम ने आगे जो कुछ कहा-सुनाया, उसने इस प्रश्न का समाधान

किया। निश्चय ही वसुहोम को सभी कुछ ज्ञात हुआ होगा। सहजता से वह मिल सका होगा वसुदेव-देवकी से।

वसुदेव द्वारा बनायी जा रही राजनीतिक परिवर्तन की योजना असफल भले ही हो गयी हो, किन्तु विवाह वाले दिन वसुदेव ने जिस नाटकीयता के साथ, वसुहोम को सार्वजनिक रूप से लांछित-ताड़ित किया था, उसने अनायास ही वसुहोम को कंस तक पहुंचा दिया।

रात्रि का दूसरा पहर ढलते-ढलते वसुहोम को बुलाने प्रतिहारी आ पहुंचा था—"चलो! महाराजाधिराज कंस तुम्हें बुला रहे हैं।"

भय और चिन्ता से थरथराता वसुहोम उठा। लड़खड़ाता हुआ-सा चल पड़ा। मन में तरह-तरह की आशंकाएं थीं। कंस बड़े अनिश्चित स्वभाव का व्यक्ति है। न जाने वसुहोम के साथ क्या व्यवहार करे? किस पल, क्या सोचे, और क्या कर डाले? इसी दुविधापूर्ण मनःस्थिति में वह कंस के सामने पहुंच गया था।

कंस बहुत क्रोधित और उत्तेजित दीख रहा था। दीर्घकाय और शक्तिशाली कंस के कंधे चौड़े थे और उसकी आंखें सदा ही रक्तिम रहा करती थीं। वह आश्चर्यजनक रूप से फुर्तीला और लड़ाका भी था। उसकी उखड़ी मनःस्थिति ने वसुहोम के भीतर भय की एक सुरसुरी फैला दी थी। तभी कंस का भारी स्वर गूंजा, "वसुहोम! दुष्ट वसुदेव ने तुमसे जो व्यवहार किया, वह मुझे नहीं भाया। तुम्हें जन-सामान्य के बीच जो चर्चाएं मिली थीं, वे असत्य नहीं थीं।"

"जी। महाराज!" वसुहोम ने कहना चाहा था, पर लगा कि बोलकर भी बोल नहीं सका है। स्वर गले के सूखे रेगिस्तान में ही कहीं अटककर रह गया है। हकबकाया हुआ कंस को देखता रहा।

कंस ने आगे कहा—"पर वसुदेव के षड्यंत्र का जो रूप तुमने सुना, वह वैसा नहीं है। उस दुष्ट के रक्त से मेरी मृत्यु पल रही है। अतः मैंने

उन्हें दंडित करने का निश्चय किया है। मैं इस बात से प्रसन्न हूं कि तुमने मथुरा राज्य और मेरे प्रति अपना राजधर्म पूरा किया है। मेरी इच्छा है कि जिस कारागृह में वसुदेव और देवकी बन्द हैं, उसकी सम्पूर्ण देखरेख और व्यवस्था तुम करो। आज से मैं तुम्हें कारागृह का नायक नियुक्त करता हूं।"

अविश्वास और आश्चर्य से मुंह खुला रह गया था वसुहोम का। यह क्या? कंस उस पर इतना विश्वास कर रहा है? तुरन्त ही मस्तिष्क में कारण कौंध गया। वसुदेव ने जिस तरह सार्वजनिक रूप से वसुहोम को अपमानित लांछित किया था, उसी के कारण अनायास वसुहोम कंस का विश्वसनीय हो गया है।

कंस हौले-हौले चहलकदमी कर रहे थे। हाथ पीछे बांधे हुए वह विचारमग्न इस तरह बोले जा रहे थे, जैसे उन्होंने तय कर लिया हो कि क्या करना है। कहा—"और सुनो। वसुदेव और देवकी के साथ-साथ उस कारागृह में महाराज उग्रसेन भी बन्दी हैं। मेरा विचार है अब तुम अपने उस अपमान का पूरा-पूरा प्रतिशोध दुष्ट वसुदेव से ले सकोगे जो उसने तुम्हारा किया है।"

"जि-ज्जी, महाराज!" वसुहोम ने समूची शक्ति सहेजी। लड़खड़ाते हुए शब्द उंडेल दिये।

"मैं तुम्हें बहुत बड़ा दायित्व सौंप रहा हूं वसुहोम!" कंस बोले थे—"यदि तुम ठीक तरह निर्वाह कर सके तब राज्य की ओर से तुम्हें पुरस्कृत किया जाएगा।"

घिघियायी हुई हंसी में हंस पड़ा था वसुहोम, "आपकी···आपकी बड़ी कृपा राजाधिराज।"

कंस ने एक ओर रखा घंटा बजा दिया। प्रतिहारी उपस्थित हुए। कंस ने आज्ञा दी थी—"वसुहोम को इसी क्षण कारागृह के अधीक्षक के निवास पर पहुंचाने की व्यवस्था करो।" फिर उन्होंने आदेशपत्र उठाकर वसुहोम की ओर बढ़ाया था—"अब से तुम कारागृह के अधीक्षक हुए। यह है तुम्हारा नियुक्ति पत्र।" इसके पहले कि कोई कुछ बोले, कंस के अगले आदेश प्रतिहारियों को हुए थे—"पूर्व अधीक्षक से कहा जाये कि कल

वह अपना निवास नये अधीक्षक के लिए रिक्त कर दे। कारागृह की सारी व्यवस्था समझा दे और प्रातःकाल मेरे पास उपस्थित हो।"

"जैसी आज्ञा देव!" प्रतिहारियों ने सिर झुकाये। वसुहोम ने महाराज कंस को दंडवत किया और चल पड़ा।

बहुत प्रसन्न और निश्चिन्त था वसुहोम। कैसा विचित्र संयोग रचा है ईश्वर ने? दुष्ट राजा ने उसे कारागृह अधीक्षक बनाकर अपरोक्ष रूप से वसुदेव-देवकी की प्राणरक्षा कर दी है। वसुहोम प्रसन्न था। लगता था कि विधाता वसुदेव-देवकी की रक्षार्थ ही उसे इस तरह नियुक्ति पर भिजवा रहे हैं।

रथ से कारागृह अधीक्षक के निवास तक पहुंचते हुए वह उत्साह से भर उठा था। थोड़े ही समय बाद वह देवकी-वसुदेव से भेंट कर सकेगा। कैसा लगेगा उन्हें जब वे वसुहोम को इस नये पद पर नियुक्त देखेंगे?

प्रतिहारी ने अधीक्षक को वसुहोम से मिलवा दिया था। वृद्ध अधीक्षक ने पदभार लेने आये वसुहोम को इस तरह देखा था जैसे वह कोई शत्रु हो। वह राजा उग्रसेन के समय नियुक्त हुआ था और बहुत पहले से समझ रहा था कि बहुत दिनों तक कंस उसे इस महत्वपूर्ण पद पर नहीं रहने देगा।

राजा का आदेश-पत्र पाते ही उसने वसुहोम को कारागृह की चाबियां एवं अन्य सभी सामग्री सौंप दी थी—फिर कहा था, "चलो!...मैं तुम्हें उन बन्दियों के कक्ष दिखाये देता हूं, जिनमें महत्वपूर्ण लोग हैं।..."

वसुहोम उसके पीछे-पीछे हो लिया। प्रतिहारी राजा का आदेश सुनाकर लौट गया।

कारागृह के प्रत्येक कक्ष को दिखलाया था वृद्ध अधीक्षक ने, हर बन्दी के अपराध और कारण बतलाये थे, फिर महत्वपूर्ण बन्दी गृहों की ओर बढ़ा था वह। विशालाकार दीवारों और सीखचों से जड़े दरवाजों से पहली

ही दृष्टि में समझ लिया था वसुहोम ने कि मथुरा का कारागृह बहुत कष्टदायक है। अधिकतर कक्षों में प्रकाश का प्रबन्ध नहीं था। निर्माण की स्थिति देखते हुए लगता था, जैसे सूर्य का प्रकाश भी इन गृहों में नहीं के बराबर आ पाता होगा।

राजा उग्रसेन जिस गृह में बन्द थे, वह बड़ा तो था ही, राजा के साधारण सामान और आवश्यकताओं की भी उसमें व्यवस्था कर दी गयी थी। इसके बावजूद वसुहोम को लगा था कि राजा कष्ट भोग रहे हैं!… उसके भीतर कंस के प्रति धिक्कार और घृणा के भाव भर उठे थे।

और कुछ कदम अन्धेरे रास्तों पर गुफा के बीच चलते हुए-से वे सब उस कारागृह कक्ष के सामने थे, जिसमें वसुदेव-देवकी कैद थे! जैसे ही वृद्ध अधीक्षक ने कहा था—"इस में महामंत्री अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ बन्दी हैं!…" वैसे ही वसुहोम का हृदय जोर-जोर से धड़क उठा था।

पत्थरों की अन्धेरी गुहा लगी थी वह…एकमात्र द्वार पर मोटे-मोटे लोहे के सींखचों से जड़ा विशालकार द्वार।…

जबड़े कसकर खड़ा रह गया था वसुहोम। दृष्टि भीतर गड़ी हुई।

वे धुंधलायी हुई परछाइयां जैसे दीख रहे थे। बहुत ऊंचाई पर एक झरोखा बना था—उससे रात्रि की चांदनी धार बनकर बरस रही थी; पर वह धार भी उस गुफा अन्धकार को दूर करने में असमर्थ थी।

पत्थर के ही एक बड़े आसन पर बैठे थे वसुदेव। उनके पास ही धरती पर बैठीं देवकी। शरीर पर इस समय भी नवविवाहिता के कपड़े थे; पर मन बूढ़ा हो चुका होगा? वसुहोम ने भीगे मन से सोचा था।

"चलो; भाई!" सहसा वृद्ध अधीक्षक बोल पड़ा था—"मुड़ते हुए बड़बड़ाया था वह—"विधाता भी मनुष्य को कैसी परीक्षा में डालता है?" सहसा उसने अपने आपको थाम लिया था। वसुहोम की ओर देखा—

सहम गया। संभवतः वह इस विचार से डर गया था कि नया अधीक्षक कंस का विश्वसनीय व्यक्ति होगा। उसके सामने बन्दी राजा या महामंत्री से किसी प्रकार की सहानुभूति व्यक्त करना अपराध हो सकता है।

वे चले आये थे। वसुहोम पीड़ा से भर उठा था—महामंत्री वसुदेव और उनकी निर्दोष पत्नी को कैसा कष्ट मिल रहा होगा?···इस कल्पना भर के कारण रात्रि के शेष समय वह ठीक तरह पलक नहीं झपक सका था।

भोर होते ही वृद्ध अधीक्षक ने उससे विदा ले ली थी—"अच्छा, भाई।···चलता हूं—दायित्व तुमने सम्हाल ही लिया है।"

"धन्यवाद वृद्धवर।···" वसुहोम ने आदरपूर्वक उसे विदा किया।

कुछ समय बाद वह कारागृह के सभी सैनिकों, अधिकारियों से मिल-जुल रहा था। उसने बन्दियों की भोजन-व्यवस्था, सुविधा-असुविधाओं को लेकर विचार-विमर्श किया था, फिर देर तक एकांत कक्ष में अकेला बैठा सोचता रहा कि किस तरह वसुदेव-देवकी से सम्पर्क साधे, उनसे बातचीत करे! पता चला था कि वृद्ध अधीक्षक से पूर्व कंस ने कारागृह में सभी सैनिकों, अधिकारियों को एक-एक कर हटा दिया था। उनके स्थान पर उसके अपने विश्वसनीय सैनिक और सेवक आ गये थे। उनसे घिरे रहकर वसुहोम के लिए वसुदेव-देवकी से मिलना तो सहज था; किन्तु वार्ता करना, बचाव का कोई मार्ग ढूंढ़ना नितान्त असंभव था।··· हर बन्दी-कक्ष के द्वार पर दो-दो पहरेदार रहते थे और उनकी उपस्थिति में वसुहोम कोई ऐसी-वैसी हरकत करके अपने हाथ आया अधिकार छोड़ने की भूल नहीं कर सकता था।

उस समूचे दिन की माथापच्ची के बाद वसुहोम ने राह खोज निकाली थी। उसने असावधानी और सेवा के प्रति अक्षमता का दोष लगाकर लगभग दस पहरेदारों को लेकर कंस के पास सूचना भेजते हुए निवेदन किया था—"कृपाकर इन व्यक्तियों के अतिरिक्त योग्य व्यक्ति चुनने का मुझे अवसर दिया जाये। इस तरह कारागृह की कठोर अनुशासन व्यवस्था करने में मुझे सुविधा होगी।

तुरंत राजा का आदेश मिला—"तुम अपनी पसन्द के व्यक्तियों को

राजसेवा में ले सकते हो !"

वसुहोम को जैसे मुंह-मांगा वरदान मिल गया! उसने अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को सेवा में बुला भेजा। ये सभी व्यक्ति क्रमशः वसुदेव-देवकी, महाराज उग्रसेन एवं उग्रसेन समर्थक कुछ अन्य महत्वपूर्ण सरदारों के बन्दीगृहों पर पहरेदार बना दिये गये।

एक तरह से महत्वपूर्ण बन्दियों के सम्पूर्ण हिस्से में वसुहोम के विश्वसनीय आदमियों का बोलबाला हो गया। अब वसुदेव-देवकी से सम्पर्क साधने में तनिक भी कठिनाई नहीं रही थी।

अगली रात्रि को वसुदेव-देवकी के बन्दीकक्ष का द्वार खोला गया।

घबराये, चिन्तित पति-पत्नी दोनों द्वार की ओर देखने लगे। पहरेदारों ने प्रवेश किया, फिर कारागृह के नये अधीक्षक ने बन्दीगृह में कदम रखे। आश्चर्य और अविश्वास से भरकर वसुदेव के होंठों से निकल गया था—"तुम वसुहोम !"

वसुहोम ने अभिवादन किया—"हां, मंत्रिवर।...मैं वसुहोम। अब इस कारागृह का नया अधीक्षक नियुक्त हुआ हूं।"

"वसुदेव ही नहीं, देवकी भी चकित दृष्टि से उसे देख रही थीं। वसुहोम ने मुड़कर पहरेदारों को आदेश दिया था—"तुम लोग बाहर जाओ। कोई विशेष गतिविधि हो, तो मुझे तुरंत सूचित करना।"

"जैसी आज्ञा देव !" पहरेदार बाहर चले गये।

वसुदेव अब भी हक्के-बक्के होकर वसुहोम को देख रहे थे। वसुहोम ने मुसकराकर पूछा था—"कैसे हैं मंत्रिवर? उस रात्रि आपके थप्पड़ ने ही मुझे अधीक्षक बनवा दिया।"

वसुदेव फिर भी कुछ नहीं बोले।

वसुहोम ने पूछा था—"अब यह बतलाइए, मंत्रिश्रेष्ठ। यह सब कैसे हुआ ?"

"तुम्हें किसी ने कुछ नहीं बतलाया ?"

"कोई कुछ नहीं जानता।" वसुहोम ने उत्तर दिया—"सबका यही विचार है कि आप महाराज कंस के विरुद्ध किसी राजनयिक षड्यंत्र की रचना कर रहे थे !"

"अच्छा होता, वसुहोम ! ···मुझे उसी आरोप में बन्दी बनाया जाता···।" वसुदेव की आवाज़ में पीड़ा उभर आयी थी—"पर दुख है कि वैसा न करके मुझे दुष्ट राजा ने मृत्यु-माध्यम मान लिया। केवल इसी कारण मैं और निर्दोष देवकी इस कष्ट को भोग रहे हैं !" उनके स्वर में पीड़ा से अधिक घृणा भरी हुई थी।

वसुहोम टकटकी लगाये देख रहा था। वसुदेव ने जो कुछ उस दिन उसे बतलाया, उससे वसुहोम ने समझ लिया था कि कंस-नाश का समय बहुत दूर नहीं है !

वसुदेव ने कहा था—"हमारा रथ हांकते हुए जब महाराज कंस हमें निवास पर छोड़ने जा रहे थे, तभी उन्हें एक आश्चर्यजनक सूचना मिली थी वसुहोम !"

"कैसे महाराज ?"

"एक ज्ञानी पंडित और तपस्वी से।" वसुदेव ने बतलाया था—"महाराज कंस हमें आशीर्वाद दिलाने के लिए उस तपस्वी के निवास पर रुक गये थे। वह मार्ग में ही पड़ता था। मैं तो स्वयं भी आश्चर्यचकित हूं वसुहोम कि जैसे ही हम उस तेजस्वी तपस्वी के समक्ष पहुंचे, वैसे ही उसने कहा था—"आओ, वसुदेव।···मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

महाराज कंस और हम दोनों बहुत चकित हुए। तपस्वी को प्रणाम करके जब हम बैठ गये, तब सहसा तपस्वी कंस की ओर मुड़े। कहा था—"विधाता का लेख भी भला कौन जान सका है मथुरापति ! तुम जिन्हें आशीष दिलाने लाये हो, वे ही एक दिन तुम्हारी मृत्यु के माध्यम बनेंगे !···"

तपस्वी के शब्द पूरे हों, इसके पहले ही कंस ने घबराकर प्रश्न किया था—"यह क्या कह रहे हैं, मुनिवर ! ···देवकी मेरी बहिन है और

यदुश्रेष्ठ वसुदेव मेरे महामंत्री तथा बहनोई। भला ये क्यों मेरे अहित के कारण बन सकते हैं?"

हम दोनों घबराये और सहमे हुए से देख रहे थे तपस्वी को।

"इसीलिए तो मैंने कहा है कंस! विधि का निर्णय भी विचित्र होता है।" तपस्वी कहता गया था—"तुम जिन बहन-बहनोई को श्रद्धापूर्वक उनके निवास पर छोड़ने जा रहे हो, उन्हीं की संतति तुम्हारा संहार करेगी।"

झुंझला उठे थे कंस—"यह···यह आप कैसी बातें कर रहे हैं महाराज!"

तपस्वी पुनः हंसे—"यह नियति-सत्य है, राजन्!···" उन्होंने पुनः अपने शब्द दोहराये थे—"तुम्हारी बहिन देवकी के गर्भ से होनेवाला कोई पुत्र अपूर्व तेजस्वी और अद्‌भुत होगा और वही तुम्हें हत करेगा। यह तुम्हारा भविष्य भी है कंस और इस दम्पत्ति के लिए मेरा शुभाशीष भी।"

"असंभव!"···कंस सहसा उद्विग्न हो उठे। क्रोधपूर्वक उन्होंने सरल देवकी को देखा था, जो भयातुर अपने भाई का रौद्र रूप देखने लगी थीं। कंस ने नाग की तरह फुंफकारते हुए विषाक्त शब्द कहे थे—"ऐसा अवसर कभी नहीं आयेगा तपस्वी। कंस अपने काल को जनमने से पूर्व ही हत कर देगा।"

तपस्वी हंसा, बड़बड़ाया, बोला—"अब तक काल को भी भला कोई हत कर सका है कंस! ···फिर भी प्रयत्न करो कि तुम काल पर जय पा सको। देवी देवकी और पवित्र वसुदेव के अंश से जनमनेवाले उस चिरंतन के मनुष्य रूप को थामो, जो अवश्य ही जनमेगा।" इसके बाद एक क्षण नहीं रुका था वह तपस्वी। शिव-स्मरण करता हुआ बाहर चला गया था।

भयभीत वसुदेव और देवकी अनायास आयी इस विपत्ति से डरे हुए कंस के क्रोधित-उत्तेजित रूप को देख रहे थे। कंस ने कुछ पल उन्हें घूरा था, फिर विक्षिप्तों की तरह चीखने लगा था—"ऐसा कभी नहीं होगा। कंस ऐसा कभी नहीं होने देगा।" उसने तलवार खींच निकाली थी म्यान से।

देवकी के होंठों से एक चीख निकल गयी थी—"नहीं, नहीं भइया।··· किसी के कहने मात्र से तुम अपनी निर्दोष बहिन और बहनोई की हत्या का पातक क्यों ले रहे हो?"

अब तक सहमे-सकुचे रहे वसुदेव ने भी जैसे साहस बटोर लिया था। कंस के हाथ में उठी तलवार उनके सिर पर गिरे, इसके पहले ही बोल पड़े थे वह। स्वर में विनम्रता थी, शब्दों में सहजता—"राजन्।···यदि हमें हत करने से आपकी जीवन-रक्षा होती हो तो अवश्य कीजिए; किन्तु यह तो विचार कीजिए कि देवकी आपकी बहिन हैं। वह पूर्णतः निर्दोष हैं।"

न जाने कैसे, क्या सोचकर क्रोधी और उन्मत्त स्वभाववाला कंस भी थम गया था; किन्तु उसने एक कटु निर्णय ले लिया था। बोला—"ठीक है वसुदेव। मैं व्यर्थ ही तुम लोगों की हत्या नहीं करूंगा। किन्तु इतना निश्चित है कि तुम्हारी हर संतान जन्म के साथ ही मृत्युमुख में भेज दी जायेगी।"

"और इस तरह हम लोग निवासस्थान पर न पहुंचकर कारागृह आ पहुंचे हैं वसुहोम···!" वसुदेव का स्वर भरा हुआ था—"क्या-क्या सोचा था कि कंस के दुष्ट शासन से मथुरा को मुक्ति मिले और राजा उग्रसेन पुनः शासनारूढ़ हों; किन्तु विधि का विधान।···उसने हमें बन्दी बना दिया।"

देवकी विगत-घटित को पुनः सुनकर हौले से सिसकने लगी थीं। वसुहोम का मन भी भर आया। सचमुच कंस कितना क्रूर और निर्मम हो सकता है, इसका उदाहरण उनके सामने देवकी-वसुदेव का सद्यविवाहित जीवन था।

वसुहोम ने सब कुछ सुना। बोला था—"शान्त हो, देव। ईश्वर पर विश्वास रखें। निस्सन्देह देवकसुता का अंश मथुरा को मुक्ति दिलाने

अवतरित होगा। तपस्वी का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। वे नक्षत्र गणित के ज्ञानी होते हैं, महाराज। उन्हें यह भी ज्ञात होता है कि कब, किस गर्भांश से कैसी सन्तति उत्पन्न हो सकती है। आपका पुत्र अवश्य ही ईश्वरांश ही होगा।"

वसुहोम ने कहने को बहुत कुछ कह दिया था; किन्तु जानता था कि इस समय इस तरह के आश्वासन उन दुखी दम्पत्ति की सांत्वना नहीं बन सकेंगे। उस दिन वह ऐसे ही पीड़ाक्षणों के बीच लौट आया था।

किन्तु उसके बाद उसने वसुदेव-देवकी के शुभार्थ बहुत कुछ किया था, बहुत साधन जुटाये थे। देवकी गर्भवती हुई, तो कंस की पूर्व आज्ञानुसार वसुहोम बाध्य था कि उसे समाचार पहुंचाये।

देवकी के पुत्र-जन्म का समाचार मिलते ही कंस कारागार में आ पहुंचा था। उसने अति-क्रूरतापूर्वक उस सद्यजात बालक के प्राण ले लिये थे। वसुहोम वज्रपात की तरह वह घिनौना हत्याकांड देखता झेलता रहा था। वसुदेव-देवकी बेबसी में विलाप करते रह गये थे।

यह क्रम कितनी बार चला—वह सब स्मरण करना भी कष्टकर है वसुहोम के लिए। देवकी और वसुदेव लगभग रुग्ण होने लगे थे। संतति-हत्या के वे क्रूर दृश्य उन्हें केवल मानसिक सन्ताप ही नहीं देते रहे थे; उनकी समूची शारीरिक और आत्मिक शक्ति को नष्ट किये डाल रहे थे। तभी वसुहोम को उसके विश्वसनीय गुप्तचर ने समाचार दिया था—"देव!...वसुदेव की पत्नी रोहिनी के जिस बालक को नंद गोप के यहां भिजवाया गया था, वह सकुशल, सानंद है!"

वसुहोम बहुत चिन्तित रहा करता था उन दिनों। देवकी पुनः गर्भवती हुई थीं...इस बार भी कंस निश्चित रूप से उनकी होने वाली संतान को नष्ट कर देने वाला था। समाचार उस तक पहुंच चुका था।

"ठीक है, तुम कुछ देर बाहर रुककर मेरी प्रतीक्षा करो।" वसुहोम ने आदेश दिया था।

गुप्तचर चला गया।

वसुहोम निरंतर विचारमग्न रहे। इस बार किसी-न-किसी तरह देवकी के गर्भ में पल रहे शिशु की रक्षा करनी होगी वसुहोम को। क्यों;

किस शक्ति से प्रेरित यह विचार और दुस्साहस वसुहोम के भीतर जनमा था, वह नहीं जानता, किन्तु इतना जानता था कि कोई दैवीय इच्छा ही है, जो अत्यन्त बलवती होकर उसे किसी भी तरह की विपत्ति झेलते हुए, यह असंभव—संभव करने की प्रेरणा दे रही है।

याद हो आया था—कंस से कहा गया तपस्वी का कथन ! ···कहीं ऐसा तो नहीं कि वह अद्‌भुत, अलौकिक शक्ति ही इस बार देवी-देवकी के गर्भ में हो ? ···वह वसुहोम को माध्यम बना रही हो—उसकी रक्षा का ?

कंस के कारागृह की बहुविधि शक्ति और सत्ता होते हुए भी वसुहोम या कोई और सद्यजात शिशु को कहीं और ले जा सकते हैं, यह कल्पनातीत लगता था। केवल कल्पनातीत ही नहीं, उद्दंडतापूर्ण दुस्साहस।

तिस पर गर्भ के शिशु का जन्म होते ही तो कंस आ पहुंचता है। एक विचार आया था—वसुहोम ही बच्चे को लेकर भाग खड़ा हो ?

किन्तु जायेगा कहां ? रोम खड़े हो गये थे शरीर के। विचारमात्र ने भय की एक कम्पनभरी लहर भर डाली थी बदन में।

बालक को न पाकर कंस साक्षात् यम की भांति उग्र हो उठेगा। मथुरा जनपद या जनपद से बाहर कहीं भी छिप चुके वसुहोम और उस बच्चे को वह खोज ही नहीं निकालेगा, अपितु क्रूरतापूर्वक हत कर देगा। कंस की विशाल शक्ति और सम्पन्नता के आगे यह विचारचेष्टा केवल बालवत थी। इसे त्यागना ही उचित !

कोई और राह निकालनी होगी। वसुहोम ने सोचा था।

पर कौन-सी राह ? ···किस तरह ? ···

जितना-जितना सोचता, लगता कि वह अन्धेरे के बीच व्यर्थ ही छटपटा रहा है। ज्योतिहीन स्थिति में ज्योति कहां से आयेगी ?

और ऐसे ही तनाव से भरे क्षणों में आ पहुंचा था वह समाचार ! ··· वसुदेव के विश्वसनीय मित्र नन्द गोप की पत्नी यशोदा गर्भवती हैं !

लगा था कि दृष्टि के सामने सूर्य की असंख्य किरणें फूट पड़ी हैं। अब तनिक भी अन्धकार शेष नहीं ! ···सब स्पष्ट ! ···सारी योजना, सारी गति और समूचा धर्म ! ···

लगा था कि निःसन्देह ही देवकी के गर्भ में पल रहे उस अलौकिक ने वसुहोम को इस अन्धकार में राह दिला दी है !…पल भर में ही सारी योजना माथे में कौंध गयी थी वसुहोम के।

क्षण की भी देर न कर वह तीव्रगति से कारागृह में पहुंचकर वसुदेव देवकी के सामने था। हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक निवेदन किया था वसुहोम ने—"मंत्रिवर ! मैं देवकी के गर्भांश की रक्षा का एक प्रस्ताव लेकर आया हूं। यदि आप स्वीकृति दें तो तदनुसार सारी व्यवस्था कर दूं ?"

"क्या ?"

वसुहोम ने सब कुछ कह सुनाया। वह सब, जो निश्चित किया था। देवकी और वसुदेव स्तब्ध होकर सुनते रहे थे—सहसा वसुदेव बोले थे—"नहीं-नहीं मैं ऐसा अपराध नहीं कर सकता। अपनी संतति के शुभार्थ अपने मित्र की कन्या को हत करवा दूं—? घृणित !…कल्पना मात्र से मुझे घृणा हो रही है वसुहोम !…तुमने वहुत ओछा विचार किया है।"

देवकी के होंठों से भी पीड़ामय शब्द निकल पड़े थे—"धिः !…यह तो जघन्य पाप होगा, वसुहोम !…नहीं, हम अपने अंश की रक्षा के निमित्त यह घृणित कर्म कभी नहीं कर सकेंगे !"

वसुहोम ने सुना। जानता था कि सरलमन पति-पत्नी पर यही प्रतिक्रिया होगी, किन्तु धैर्य रखा। बोला, "क्षमा करें देवी !…यदि तपस्वी के शब्द सत्य हैं, तब मुझे लगता है कि यह पाप भी पुण्य होगा ! अवश्य नियति ने ही नंदपत्नी यशोदा को ठीक उसी समय गर्भधारण करवाया है, जब आप गर्भवती हुई हैं इसे मात्र संयोग नहीं मानें !…अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें !…"

"किंतु वसुहोम…?" वसुदेव का निर्णय डांवाडोल हुआ था। वसुहोम ने उन्हें अधिक सोचने-विचारने का अवसर नहीं दिया। बोला—"मंत्रिवर !

आप पाप-पुण्य का निर्णय निजत्व के आधार पर न करें, मेरी यह प्रार्थना है। आपकी संतति से ही मथुरा का विशाल जनपद कंस की क्रूरता और अत्याचारों से मुक्ति पानेवाला है, अतः आपका धर्म अपने पाप को लेकर विचारने भर से पूरा नहीं होगा, समग्र की दृष्टि से सोचें!"

"किन्तु···किन्तु यशोदा भी माता हैं—वसुहोम!" इस बार देवकी का नारीमन भावुक हो उठा था—यह कैसे संभव है कि वह अपने गर्भ की वलि, मेरे गर्भांश के लिए दें!···क्या इस तरह मैं उनके प्रति अपराधी नहीं हो जाऊंगी?"

"आप धैर्य रखें, देवी!···पाप और पुण्य मनुष्य के कर्म में नहीं, कर्म के परिणाम में निहित होते हैं।" वसुहोम के होंठों से कैसे तार्किक सूत्र निकलने लगे थे, वह स्वयं ही चकित हुआ था—"इस समय विधाता ने जो मार्ग दिया है, मुझे वही उचित जान पड़ता है···"

"हम यह सब स्वीकार भी लें वसुहोम! तब क्या यह आवश्यक है कि मित्र नंदगोप यह स्वीकार लेंगे?···" वसुदेव ने प्रश्न किया।

"यदि यादवसुता देवकी के गर्भ से ईश्वरांश ही है, तब निश्चय ही हर परिस्थिति अनुकूल होती जायेगी मंत्रिश्रेष्ठ!···आप आश्वस्त हों।" वसुहोम ने उत्तर दिया था।

देवकी और वसुदेव अधिक तर्कातर्क नहीं कर सके थे। चुपचाप वसुहोम का प्रस्ताव मान लिया था।

वसुहोम लौट पड़ा। उसे अनुभव हो रहा था, जैसे अनायास ही उसमें अद्‌भुत आत्मबल और साहस पैदा हो गया है। कहां से, क्यों यह सब जनम आया है, वह नहीं जानता था; किन्तु इतना जान रहा था—कुछ है, जो यह सब करवा रहा है उससे। वही है, जो शक्ति, बुद्धि, सामर्थ्य और तर्क बन गया है।

"निस्सन्देह वही! वह जो अनुभूत होता है, सहज दर्शित नहीं!··· ऐसा न होता, तो वह सब कैसे हो जाता, जो होता गया?" वसुहोम

बड़बड़ाता हुआ अनायास ही कहीं दूर चला गया था अपने आप से। एक क्षण के लिए वह किसी ज्योति-समुद्र से भरा-भरा लगने लगा था।

किशोर आयु पांडव हृतप्रभ से उसका चेहरा देख रहे थे। विदुर की आंखें स्नेह से छलछला आयी थीं, कहा—"तुमने उचित ही विचार किया है, वसुहोम !...निःसन्देह वह सब ईश्वरीय ही रहा होगा।"

"हां, महात्मन !..." वसुहोम ने कहा था—"वह बालक अलौकिक ही था, जो उस समय माता देवकी के गर्भ में था। जन्म के साथ ही जिस तरह की विलक्षण घटनाएं घटनी प्रारम्भ हुई थीं, "वे आप लोग सुनेंगे तो स्वयं ही अनुभव करने लगेंगे कि जिस कृष्ण ने दुष्ट, बलशाली और मदांध कंस को हत किया, वह असाधारण है। लगता है कि वही है, जो असंभाव्य को संभाव्य में परिवर्तित करने का अतिमानवीय क्षमताओं से युक्त है।

और वसुहोम ने टूटी कथा पुनः प्रारम्भ कर दी थी। जितना-जितना सुनते जा रहे थे वे सब, उतने-उतने रोमांचित होते जा रहे थे। हर शब्द, हर मोड़ के साथ लगता था—असंभव...असंभव !...असंभव !...

पर हर असंभव—संभव हुआ था, यही सुनाता गया था वसुहोम।

सुनते-सुनते बुदबुदा उठे थे वृद्ध विदुर—"सर्वज्ञ !...सर्वज्ञ हैं देवकी-सुत !..." लगा था कि दृष्टि में प्रणाम उभर आया है।

पांडवों के मन में उसी पल एक भूख जनम आयी थी। उस कृष्ण के दर्शन की भूख !

आये दिन उसी कृष्ण को लेकर फिर उन्हें नयी-नयी सूचनाएं मिलने लगी थीं। वे भी सब इस तरह, जैसे हर असंभव, सम्भव हुआ जा रहा हो। हर अकल्पनीय—यथार्थ बनता हुआ।

कृष्ण बालकों से लेकर वृद्धों तक चर्चा का विषय बने हुए थे। अल्पायु कृष्ण !...युवा हो गये थे; उस समय तक, पर व्यक्तित्व से जुड़ गयी थीं असंख्य आश्चर्यकथाएं !...

और कृष्ण सामने हैं।

सर्वज्ञ !...निस्सन्देह सर्वज्ञ !...

"पांडवों को युधिष्ठिर, कर्ण, शकुनि, अश्वत्थामा कोई भी तो नहीं था, जो पहचान सका हो?..." अर्जुन के माथे में एक के बाद एक तरंगें बह रही थीं; किन्तु कृष्ण ने उन्हें पहचाना। पहचाना ही नहीं पा भी लिया। स्मरण में कुछ समय पूर्व द्वार खुलते ही कृष्ण की मोहदृष्टि का अर्जुन के चेहरे पर टिकना उभर आया है। वह दृष्टि भर थी या सम्बोधन?...जैसे कह रहे हों—"कैसे हो अर्जुन?"

रोमांच अनुभव किया था अर्जुन ने। कृष्ण बोले थे—"यह जानकर ही मैं बहुत हर्षित हूं कि आप सब लाक्षागृह के षड्यंत्र से जीवित निकल आये, किन्तु लगता है, जैसे अभी सम्पूर्ण अभ्युदय का समय नहीं आया; अर्जुन !...पर वह आयेगा निश्चित !"

इन स्वरों ने अनायास ही पांचों भाइयों के भीतर विद्युतवत् प्रभाव किया था। लगा था कि क्रमशः खोता जाता रहा, विश्वास अनायास ही पुनः एकत्र हो गया है। एकत्र ही नहीं हुआ—शिला की भांति कठोर हो गया है।

कोई कुछ कहे, इसके पूर्व ही सहसा उठ खड़े हुए कृष्ण। उनके साथ शान्त बलभद्र। कृष्ण बोले थे—"अब हम लोग चलेंगे।" एक क्षण रुककर उन्होंने कहा था—"हमारा यहां से अपने डेरे पर पहुंचना ही आप सब के लिए शुभकारी होगा।"

अर्जुन का मन हुआ था—उन्हें रोकें—कहें—"कुछ पल रुको, कृष्ण !..." पर अजब सम्मोहन था उनके शब्दों में। कृष्ण की मुसकान भर मिली थी उन्हें, फिर वह द्वार खोलकर तीव्रगति से चले गये।

पांडव ठिठके-से खड़े देखते रह गये थे उन्हें। कृष्ण मार्ग पर जाकर अलोप हो गये। पर कहां लोप हुए थे कृष्ण?

सभी को लगता था कृष्ण उनके बहुत पास हैं—आश्वासन भरी वह दृष्टि और स्नेह का समुद्र उंडेलते हुए—"अभी सम्पूर्ण अभ्युदय का समय नहीं आया अर्जुन, पर वह आयेगा निश्चित !..."

ये शब्द हैं या साक्षात् कृष्ण। लगता था कि विश्वास बनकर कुन्ती

ही नहीं, हर पांडव के मन में जड़ कर रह गये हैं। न भुलाए जा सकने वाले शब्द, शब्दों की शक्ति, आत्मविश्वास और स्नेह से छलकती वह दृष्टि। आशामृत ने संजीवनी शक्ति का काम किया था।

स्तब्ध-से जब कुछ समय वे कृष्ण-उपस्थिति में खोये रहे, तब कुन्ती ने कहा था—"मैंने कहा था न, युधिष्ठिर! वह सदा ही हम सबका स्मरण करता होगा। हमारे शुभार्थ किसी न किसी दिन अवश्य आयेगा!"

उन सभी ने सुना था—क्रमशः एक-दूसरे को देखा, फिर जैसे आंखों ही आंखों में विश्वास का आदान-प्रदान किया था। हां! निस्सन्देह कृष्ण का आना यों ही नहीं है। उनके आने का अर्थ है—हम सबका कुछ न कुछ पाना।

युधिष्ठिर के मन में एक बार फिर वही पुरानी यादें घिर आयी थीं। कृष्ण का आना।

आने का भी एक अर्थ—जाने का भी एक अर्थ! यही कुछ तो कहा था वसुहोम ने। बोला था—"···पांडवजननी!···जब कृष्ण गर्भ में आये, उसी क्षण, जैसे उनका आना बहुतों के लिए बहुत तरह अर्थपूर्ण हो गया था। मुझ में ही कैसी स्फूर्ति समा गयी थी? ऐसा लगता था जैसे कंस के कारागृह से उन्हें माता यशोदा की गोद तक पहुंचाना ही मेरा जन्म का मूल उद्देश्य है! उसकी पूर्ति के लिए ही मैंने जनम लिया है।

और आज वह अनायास ही चर्चाओं से परे होकर पांडवों के सामने साक्षात् हुए हैं। युधिष्ठिर के कानों में शब्द घुमड़ने लगे थे। वे शब्द, जो उन्होंने अर्जुन को सम्बोधित करके कहे।

लगता है, शब्द नहीं—शक्ति संचार है वह!···निराशा को चकनाचूर करती अभूतपूर्व और असामान्य शक्ति!···

युधिष्ठिर ने क्रम से भाइयों के चेहरे देखे। सब विचित्र सी चमक लिये हुए! वे चेहरे, जो लाक्षागृह की अग्नि से बच निकलने पर भी निराशा और भविष्यहीनता के अन्धकार से केवल छाया बन गये थे।

और अब वही चेहरे—ज्योति-पुंज की तरह दमकते हुए! अजाने-अनचाहे की स्मरण-नत होकर पलकें मूंद ली थीं युधिष्ठिर ने! कृष्ण!···

और फिर विगत से जा जुड़े—वही किशोरायु !…सामने बैठा है मथुरा का दूत वसुहोम…श्रोताभाव से कौतूहल में भरे पांडव बन्धु, कुन्ती, विदुर आदि।

देर बाद जैसे सहज होकर पुनः बोलने लगा था वसुहोम—"उस रात्रि महामन्त्री वसुदेव और देवकी से कारावास में भेंट करके जैसे ही मैं निवास पर लौटा, वैसे ही मैंने उस गुप्तचर को बुलाया था, जो नन्दपत्नी यशोदा की गर्भावस्था[1] का समाचार लेकर आया था। उससे मैंने गोकुलवासी नंद गोप को सन्देश कहलवाया था—"तुरन्त मुझसे मिलने को कहो। कहना कि वसुदेव और देवकी को उनसे आवश्यक कार्य है। यथासंभव उन्हें अपने साथ ही ले आना। अर्धरात्रि को मैं कारावास के बाहर रहूंगा। दूसरे प्रहर मुझे गोकुल-मथुरा मार्ग पर मिलें।

गुप्तचर सन्देश लेकर लौटा पड़ा था।

नंद गोप को लेकर बहुत कुछ सुन रखा था वसुहोम ने, पर दर्शन कभी नहीं किये थे। इस विचार भर से वह नंद के व्यक्तित्व को श्रद्धा से देखता था कि उन्होंने वसुदेव के रोहिणी से उत्पन्न पहले पुत्र संकर्षण को बड़े स्नेह से पालना प्रारम्भ किया था। वसुदेव ने अपनी अन्य संतान के प्रति भी अतिरिक्त सकर्तकता बरती थी। उन्हें लगा था कि मृत्युभय से आतंकित कंस कहीं उनकी हर संतान को ही हत करना प्रारम्भ न कर दे। नंद उनके विश्वसनीय मित्र थे। वसुहोम के माध्यम से बालक कर संकर्षण को गोकुल भिजवाया गया था। वसुहोम ने सतर्कता बरती थी कि किसी भी रूप में स्वयं को प्रकट नहीं करेगा। विश्वस्त व्यक्ति के माध्यम से नंद गोप के पास

---

१. किवदन्तियों और भक्ति-कथाओं के अनुसार कृष्ण के स्थान पर पहुंचायी गयी 'सद्यजात कन्या को लेकर विविध बातें कही गयी हैं; किन्तु एक कथा के अनुसार यशोदा की सद्यजात कन्या को ही कृष्ण के स्थान पर देवकी की गोद में पहुंचाया गया था। चतुरसेन शास्त्री एवं अन्य लेखकों की भी यही मान्यता है।

सद्यजात बालक कर संकर्षण को भिजवाते हुए वसुदेव का सन्देश कहलवा दिया था—"इसे अपना पुत्र घोषित करके पालन-पोषण करें। भाभी यशोदा से कहना कि इसे अपनी ममता धारा से आनंदित रखें !"

और बाद में निरंतर समाचार मिले थे कि नंद गोप ने मित्रता का बड़े स्नेह-सम्मान से निर्वाह किया। कर संकर्षण का नाम बलभद्र रख दिया था उन्होंने। यशोदा ने ममता के आंचल की छाया दी थी।

नंद के प्रति श्रद्धालु हो उठा था वसुहोम। उससे कहीं अधिक नंद गोप के व्यक्तित्व को लेकर चमत्कृत था। लगता था कि वह भी असामान्य और असहज भर नहीं, बहुत कुछ अतिमानवीय-सा है।

निस्सन्देह अतिमानवीय ही लगा था उन्हें। सन्देश भेजते हुए एक दुविधा मन में अवश्य आयी थी, कहीं वसुहोम को वह गलत तो नहीं समझेंगे ? पर लगा था कि सब कुछ ईश्वर प्रेरित-सा है।

समय निश्चित हुआ। वसुहोम ने नंद गोप से भेंट की। बहुत संकोच के साथ देखा था उन्हें। लगा था कि मन के भीतर श्रद्धा ने अनायास ही हाथ जोड़ दिये हैं। निवेदन किया था—"महामंत्री वसुदेव और देवकी के शुभार्थ एक निवेदन करना चाहता था, गोप बाबा !"

नंद गोप इस तरह खड़े थे, जैसे कोई सरलमन बालक खड़ा हो। उत्तर में जिस स्वर को वसुहोम ने सुना, उससे अनुभव हुआ कि यमुना की बालक-वत खिलखिलाहट सुन रहे हैं। वह बोले थे—"कहो, बन्धु ? क्या बात है ? ऐसा क्या है, जो मित्र वसुदेव के लिए नहीं किया जा सकता ?"

"आपको तो ज्ञात ही होगा, गोप बाबा ! देवकपुत्री पुनः गर्भवती हुई हैं।" गले का थूक निगलते हुए जैसे-तैसे वसुहोम कह सका था—"...और एक बार पुनः उनका गर्भस्थ शिशु जन्म लेते ही कंस का क्रूर प्रहार सहने वाला है।"

गोप ने वसुहोम को आगे कुछ नहीं कहने दिया। बात काटकर बोले; "इसी संबंध में मैं भी कुछ कहना चाहता था वसुहोम ! यदि तुम सहायता करो, तो मित्र वसुदेव की संतान बच सकती है।"

"वह किस तरह गोप बाबा !" वसुहोम चकित हुआ। कैसा संयोग है ? उसने विचार किया था—जिन वसुदेव की संतान को बचाने के लिए

वह पल-पल विचारता रहा है, उन्हीं के लिए गोप नंद भी कह रहे हैं ? उन्हीं का प्रस्ताव सुन लेना अच्छा लगा था उन्हें। यों भी वह जो कुछ कहना चाहता था, उसे कहने का आत्मबल नहीं जुटा पा रहा था। भला कैसे कहे ? किसी से उसकी संतान की बलि चाहने के लिए कौन-से शालीन शब्द हो सकते हैं ? ···बुद्धि रह-रह कर लड़खड़ा जाती थी।

नंद गोप बोले थे—"तुम्हें तो ज्ञात ही है कि कर संकर्षण मेरी पत्नी यशोदा के स्नेह तले पल-पनप रहे हैं, किन्तु मथुरा और यादव गणसंघ का शुभ देवकी-वसुदेव की संतान से है। अतः मेरा एक प्रस्ताव है, मान सको तो कहूं ?"

"आपने शुभ ही सोचा होगा, गोप बाबा !" वसुहोम विनम्रता से बोला था—"सुनकर प्रसन्नता होगी।"

"तुम्हें ज्ञात है या नहीं, पर मैं बतलाता हूं वसुहोम। मेरी भार्या यशोदा भी गर्भवती हैं।" नंद बाबा ने कहना प्रारम्भ किया था। वसुहोम सुने गया। जितना-जितना सुना, चकित ही नहीं, चमत्कृत होकर उन्हें देखता गया, आश्चर्य !

आश्चर्य या संयोग ?

पर संयोग ऐसे चमत्कार जैसे तो नहीं होते ?

विस्मय और श्रद्धा की विचित्र अनुभूति ने उसे जड़ कर रख दिया था।

कैसे न हो जाता जड़ ?

गोप ने बात ही ऐसी की थी। लगभग वही, उसी तरह और सीधा-सपाट प्रस्ताव था नंद गोप का। वसुहोम को लगता है कि वह निश्चय ही संयोगमात्र नहीं था। वह जैसे एक अद्भुत घटना थी। नंद ने कहा था कि वह देवकी के गर्भ की जगह अपनी संतान को रखवा देंगे। वसुहोम को केवल यही करना होगा कि किसी तरह कारागृह की व्यवस्था परकाबू

रखें। सब कुछ गुप्त रूप से और अच्छी तरह होना संभव है। यह योजना इस तरह बनेगी कि यशोदा को भी ज्ञात न हो सके कि जिस संतान का लालन-पालन वह कर रही हैं, वह उनका अपना गर्भांश नहीं, वसुदेव-देवकी का रक्तांश है !...[1]

जैसे-जैसे सुनता गया था वसुहोम, वैसे-वैसे चमत्कृत होता गया था। बिलकुल यही कुछ तो वह कहना चाहता था नंद गोप से और ईश्वरेच्छा—वसुहोम के टूटते-बिखरते साहस को अनायास ही सही; किन्तु विश्वास हो चुका था—दुष्ट कंस की मृत्यु ईश्वर ने आयोजित कर दी है ! ...जिस तरह देवकी के पुत्र को बचाने की योजना बन रही थी—और एक-रूपता के साथ वसुहोम और नंद बाबा के मन में आयी थी उसने मन को शक्ति दी। टूटते-बिखरते, रह-रह कर अपने ही भीतर लड़खड़ा उठते साहस को एकत्र कर दिया। वसुहोम के भीतर, उसे स्वयं ही बहुत शक्ति अनुभव हुई।

नंद गोप की बात सुनकर टकटकी बांधे हुए कुछ पल देखता ही रह गया था। आंखों में श्रद्धा थी, मन विश्वास से भरा हुआ।

"क्या कहते हो, बन्धु !" नंद गोप पूछ रहे थे।

वसुहोम जैसे-तैसे कह सका था—"विचित्र संयोग है गोप बाबा ! मैं यही कुछ इसी तरह कहने के लिए साहस नहीं जुटा पा रहा था ! इसे चमत्कार ही कहूंगा कि आपके मन में भी वही बात आयी, जो मेरे मन में थी।"

"चमत्कार नहीं, वसुहोम !" नंद बाबा ने हंसकर कहा था—"यह ईश्वरेच्छा है। उसी की प्रेरणा हुई कि मथुरा में यह विचार तुम्हारे मन के भीतर और गोकुल में मेरे मन में जागा ? संयोग मात्र नहीं कहा जा सकता है इसे।"

पुनः श्रद्धा से अभिभूत हो उठा था वसुहोम। बोलने के लिए शब्द

---

१. आचार्य चतुरसेन ने कृष्ण के जन्म को लेकर लिखा है—"कृष्ण का बदलाव यशोदा की सद्यजात कन्या से इस गोपनीय ढंग से हुआ था कि यशोदा को भी इसका पता न लगा।"

नहीं हों, तो स्वर अवरुद्ध ।

नंद बाबा कहे गए थे—"…तब इसी अनुसार, किस तरह कैसे-क्या करना होगा ? मुझे समाचार देना । मैं प्रतीक्षा करूंगा ।"

वसुहोम ने स्वीकार में सिर हिलाया । कुछ दूर तक नंद बाबा को छोड़ने गया, फिर निश्चिन्त होकर लौट आया था ।

निश्चिन्तता के बावजूद वह ठीक तरह सो नहीं सका । अब उसे देवकी की संतान को गोकुल से पहुंचाने के साथ-साथ सुरक्षित रूप से यशोदा की सद्यजात कन्या को भी यहां ले आना था ।

योजना की जिस पहली गांठ से अगले फंदे बनने थे—वह पड़ चुकी थी । अगले कुछ ही दिनों में सारी योजना बना ली गयी । वसुहोम ने सम्बद्ध व्यक्तियों को प्रतिक्षण मुस्तैदी से तैयार रहने के आदेश दिए । देवकी के पास अनुराधा को छोड़ रखा । कंस को आश्वस्त किया—"अनु मेरी पत्नी है, महाराज ! उससे अधिक विश्वसनीय मुझे कौन मिलता ?"

सुनकर कंस भी बहुत प्रसन्न हुआ । अनुराधा की नियुक्ति देवकी के लिए बनवाये गये विशेष कारागृह-कक्ष में हुई और फिर आया वह पल, जिसकी प्रतीक्षा थी ।

संध्या समय ही अनुराधा ने पति तक समाचार पहुंचा दिया था । देवकी संभवत: रात्रि तक संतान को जन्म देंगी !

वसुहोम अपने दो विश्वसनीय व्यक्तियों के साथ तैयार रहा । समाचार तुरन्त यमुना किनारे प्रतीक्षारत नाविक तक भेजा गया । नंद बाबा का विश्वसनीय व्यक्ति था वह । वसुहोम के आदमियों से नंद बाबा ने उसका परिचय करवा दिया था । उत्तर में संदेशवाहक समाचार लाया—"विचित्र संयोग है अधीक्षक महोदय !"

वसुहोम ने आश्चर्य से उसे देखा, कैसा संयोग !

"देवी यशोदा के गर्भस्थ शिशु का जन्म भी इसी समय संभावित

है!…"

मन हुआ था वसुहोम का—आश्चर्य करे! किन्तु इतने अचरजों से निरन्तर सामना हो रहा था कि अचरज होना ही समाप्त हो गया। उसकी जगह मन में एक विश्वास ने ले ली थी। विश्वास—ईश्वरेच्छा का विश्वास! सब अनायोजित होते हुए भी आयोजित-सा!

वसुहोम ने अपने विशेष व्यक्तियों की संख्या भी कारागृह में इस समय तक बढ़ा ली थी—इतनी कि उन्हें हर उस स्थान पर नियुक्त कर दिया था, जिस ओर से नवजात कृष्ण को निकालने की योजना थी। हृदय धड़क रहा था। उत्तेजना के अतिरिक्त आनंद और उत्साह ने भी वसुहोम को कुछ-कुछ असंयत-सा कर दिया। उसे लगता था कि अनजाने ही होंठ थिरका-कर वह अपने से ही कुछ-कुछ बुदबुदा उठता है…पल-पल स्वयं को सहेजता-संवारता। क्षण-क्षण सकर्तता संजोता।

मथुराधिपति तक देवकी की संतान के जन्म की सूचना देना भी उसकी जिम्मेदारी थी, पर जब तक यशोदा की संतान से देवकी की संतान का बदलाव न हो जाये, तब तक कारागृह में भी किसी को भनक नहीं मिलनी चाहिए थी कि देवकी ने किसी शिशु को ज़न्म दिया।

पल-पल व्यग्रता से अपने कक्ष में चहलकदमी कर रहा था वसुहोम, और तभी प्रकृति ने आश्चर्यजनक रूप से रंगत बदली। वसुहोम ही नहीं, समूचे कारागृह और दूर-दूर नगर-क्षेत्रों में हड़बड़ी बिखर गयी। घबरा-कर कक्ष से बाहर निकल आया था वसुहोम। ऊपर, आकाश की ओर दृष्टि उठायी। बिजलियां इस तरह कौंध रही थीं, जैसे असंख्य सर्प एक-साथ फुंफकारें मार रहे हों! सिहरा डालनेवाली भयजनिता फुंफकारें!"

"हे, अनन्त! यह क्या लीला है?" अनायास ही उसके होंठों से स्वर फूट निकले थे।

पर ये स्वर उसने स्वयं ही सुने। बहुत जोर से बड़बड़ाने के बावजूद उन स्वरों को, जो काफी जोर से होंठों के बाहर आये थे—केवल वसुहोम ने ही सुना! आकाश से गहरे काले बादल उमड़ पड़े थे। वे गर्जन कर रहे थे। ऐसा गर्जन, जिसने कारागृह ही नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि को जैसे हिला डाला था!

अभी वसुहोम कुछ सोच सकें या निर्णय ले सकें, इसके पहले ही तीखे, कौंधते स्वर उठे थे, अनेक स्वर।

"बचाओ···! बचाओ···!" लगा था कि कारागृह के भीतर ही अनेक लोग बदहवास होकर यहां-वहां दौड़ने लगे हैं।

वसुहोम कुछ पूछे या चीख सके—उसने अनुभव किया कि कारागृह की कई दीवारें अर्राकर गिर पड़ी हैं!

तूफान···! भयावह तूफान! अनेक पेड़ गिरते हुए। जोर का आंधी-पानी। वसुहोम भय से कांप उठा था! असमय यह कैसा परिवर्तन है देव? उसने थरथराते स्वर में स्वयं से ही प्रश्न किया था, क्यों? क्या वह तेज जन्म ले रहा है? इसी बीच उसने कारागृह की एक दिशा में स्त्री-मूर्ति का चेहरा देखा! विद्युत की एक कौंध लपलपायी, यह चेहरा स्पष्ट हो गया।

अनुराधा!···वह आंधी-तूफान की चिन्ता किये बिना तीव्रगति से उसी ओर लपक पड़ा। किसी को किसी की सुधि नहीं रह गयी थी। लग रहा था कि हर भवन लड़खड़ाकर गिरेगा और धूलिसात हो जायेगा। कारागृह क्षेत्र के ही अनेक पेड़ उस समय तक धाराशायी हो चुके थे! बहुतेक दीवारें टूटी हुई! यह भी क्या कम चमत्कार की स्थिति थी; कारागृह के उन कक्षों को तनिक भी क्षति नहीं पहुंची थी, जिस ओर देवकी-वसुदेव का निवास था!

सारी व्यवस्था—अव्यवस्था में बदल चुकी थी। किसी को किसी की चिन्ता नहीं। लग रहा था जैसे सब अपनी जीवनरक्षा के लिए ही यहां से वहां, और वहां से यहां भाग-दौड़ रहे हैं।

बहुत दूरी नहीं थी अनुराधा और वसुहोम के बीच, पर उतने में ही तेज वर्षा ने उसे लगभग डुबा दिया था! सौ कदम का वह मार्ग पार करते-करते हांफने लगा था वसुहोम। उसे आंधी की गति को चीरते हुए; स्वयं को वहां तक लाना पड़ा था। इस संघर्ष में बहुत शक्ति-क्षय हुई थी उसकी।

"कहो···वो···लो, क्या बात है, अनु···?" वह जैसे-तैसे पूछ सका।

"पुत्र···!" अनुराधा भी भीगी हुई थी। कंपकंपाते बदन और उतने ही कांपते स्वर में उत्तर दिया था उसने।

"सब···सब कुशल तो है ना?"

"सब ठीक है, देव! ···" अनुराधा ने उत्तर दिया था—"देवकपुत्री स्वस्थ हैं, पर आगत भय ने उन्हें मानसिक रूप से अस्वस्थ-सा कर दिया है।"

"और मंत्रिवर?"

"वे शान्त बैठे हैं।"

"चलो! ···" पल भर की देर न करके भीतर लपक पड़ा था वसुहोम। भूल गया था उस अंधड़-वर्षा को। प्रकृति कोप ने मन को समूचा निगल लिया था, किन्तु इस समाचार से मन को शक्ति मिली। कुछ ही क्षणों में दोनों देवकी के कक्ष में जा पहुंचे।

वसुहोम के विश्वसनीय द्वारपाल ज्यों-के-त्यों खड़े थे। प्रकृति के उस अभूतपूर्व उत्पात क्षण में भी उनके भीतर वह आत्मबल और साहस किस तरह, किस शक्ति के कारण मौजूद था—कौन जाने? ···वसुहोम ने एक क्षण सोचा था, पर मन से विचार परे धकेला। स्थिति से जुड़ाव लिया।

आंधी-पानी की तीव्रता बढ़ती ही जा रही थी। उसके साथ-साथ बढ़ रहे थे अतिरिक्त स्वर। स्वर जो मन को केवल डरा ही नहीं रहे थे। मृत्युभय से आतंकित किये हुए थे।

रह-रह कर वृक्षों का सनसनाकर तोड़ते गिराते तूफान की स्वर-लहरियां कारावास की दीवारों से टकरातीं। सब कुछ उलट-पुलट हुआ-सा लगता।

और ऐसे में देवकी के बालक को सुरक्षित यमुना-पार पहुंचाना होगा? वसुहोम का हृदय जोर-जोर से डोलने लगा था।

दृष्टि शिशु पर टिकी। रह-रह कर वह अन्धकार में गुम जाता। देवकी एक ओर आसन पर चुपचाप लेटी हुई थीं। जैसे न तूफान उन्हें हिला पा रहा हो, न मन में होने-न-होने का अनुभव जीवित हो। वसुदेव एक ओर शान्त बैठे हुए ऊपर झरोखे से झांकती हुई विद्युत की कौंधों को

देखते, जबड़े कस लेते। एक ओर खड़े थे वसुहोम और अनुराधा। सिर से पैर तक भीगे हुए।

समूचे कारागृह की प्रकाश-व्यवस्था चौपट हो गयी थी। भूले-भटके कुछ दीख भी जाता, तो केवल आकाश से चमकती बिजलियों के कारण। और उसी कौंध में उस शिशु का पहला दर्शन किया था वसुहोम ने। इस तरह जैसे ईश्वर को साक्षात् देख रहा हो।

मंद-मंद मुस्कराता हुआ, कोमल शिशु। वसुहोम क्षण मात्र के लिए सब कुछ भूल गया था। वह तूफान, आकाश की गर्जनाएं और तड़पती बिजलियों की तलवार जैसी धारदार ज्योति।

आंखें मुंदी हुई थीं वसुहोम की। होंठ इस तरह चल रहे थे, जैसे वह कोई कोपल का हिलता हुआ पौधा हो। स्वर में भोर की सुगंधभरी हवा का अहसास।

कुन्ती, विदुर और पांडवों ने स्तब्ध होकर उसे देखा था—क्या हो गया उसे? बोलते-बोलते कहां खो गया वह? पूछें, इसके पूर्व ही बुद-बुदाकर कह उठा था वसुहोम—"वह अनुभव अब भी मन पर तुलसी के पवित्र पत्ते जैसा अंकित हो गया है, पांडुपत्नी। अनंत का प्रथम दर्शन जो था वह। जिस-जिस क्षण याद करता हूं—यही अनुभव होता है। शरीर, संसार, सम्बन्ध, सुख-दुख सभी विस्मृत होते जान पड़ते हैं। यही अनुभव तो होता है, जो विश्वास दिलाता है—देवकीसुत चमत्कार भर नहीं, साक्षात् ईश्वर हैं।...और...और मैंने उनका बाल-दर्शन किया है, देवी। यह परम-सौभाग्य मन को आनन्दानुभूति से सदा ही नहलाये रखता है!"

वे सब चमत्कृत होकर अचरज से वसुहोम को देखे जा रहे थे। उसकी आंखें, होंठों का कम्पन और स्वर का संगीतमय आरोह-अवरोह! लग रहा था कि वह बोल नहीं रहा है, सम्पूर्ण रागनियों के साथ किसी गीत को सुना रहा है। श्लोकों की पवित्रता से भरा हुआ, सुखानन्द से भरपूर।

कोई कुछ कह या पूछ सके, इसके पूर्व वसुहोम ने छलछलायी आंखों को प्रसन्नता के साथ पोंछा; फिर कहा—"मुझे क्षमा कर दें, महात्मा विदुर। श्रीकृष्ण की छवि और उनके दर्शन का आनंद ही है, जो मुझे ही क्या मुझ जैसे अनेक लोगों को भावाभिभूत कर सकता है। उस दिन जिस तरह प्रकृति में परिवर्तन हुए, असंभाव्य—क्रमशः संभव होने लगा। उसे यदि आप देखते तब आप भी यही कहते कि जो कुछ, जिस तरह हो रहा है—वह साधारण नहीं है। असाधारण ही है! निश्चित ही असाधारण!"

असाधारण।

उस दिन जिस तरह, जो कुछ सुना था और बाद में भी कृष्ण से जुड़ीं, जिन असंभव लगनेवाली कहानियों को सुनते रहे हैं—असाधारण ही लगता है! यशोदा की पुत्री को देवकी के पास तक लाने और देवकीसुत को यशोदा तक पहुंचाने की उस रोमांचक कथा में एकमात्र वही स्थान नहीं था, जहां भावातिरेक से वसुहोम असहज हो उठा हो। कितनी ही बार, कितने ही अवसर आये थे जब सुनाते-सुनाते वसुहोम आश्चर्यजनक रूप से किसी बार उत्तेजित, किसी बार आनन्दित और किसी-किसी बार सकपकाया हुआ-सा लगने लगा था।

उतना सुन-जानकर भी अर्जुन उस असाधारणता को स्वीकार नहीं सके हैं। मानते हैं कि कृष्ण निस्सन्देह अपनी बुआ के पुत्रों का शुभ ही करेंगे, पर··· फिर भी उनकी तथाकथित 'असाधारणता' को सहसा स्वीकार नहीं पाते थे।

आज भी तो यही कुछ हुआ है—कृष्ण आये, लगा था कि 'निस्सन्देह किसी असाधारण से सामना हो गया है धनंजय का, पर तुरंत अपने को संभालने की चेष्टा करने लगे थे अर्जुन। न-न।···यह क्या कर रहे हैं वह? ···विगतकथाओं से जुड़े व्यक्तित्व को सहसा सामने पाकर शायद अकचका गये हैं···मन ने कितनी ही बार सावधान किया था—सम्हलो, अर्जुन।···

अपने व्यक्तित्व को बर्फ की तरह गलाओ मत !"

पर व्यक्तित्व थमा ही नहीं—गलता ही चला गया था। बहुत सहेजा था स्वयं को। बहुत सतर्क किया। संभलने की पूरी चेष्टा। पर व्यर्थ।...

सब याद आने लगा था। एक-एक घटना, विगत में कृष्ण को लेकर सुनी गयी एक-एक बात।

और अकेले अर्जुन को ही प्रथम दर्शन से यह चमत्कारिक अनुभूति हुई हो, ऐसा तो नहीं है ? अर्जुन ने क्रमशः सभी को देखा था, युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव। एक ओर बैठी कुन्ती। सब के चेहरों पर जैसे कृष्ण की वह अचानक उपस्थिति एक छाप बनकर बैठी हुई है।

कृष्ण···कृष्ण।···कृष्ण।···

मन अब भी यह मानने को तैयार नहीं होता कि कृष्ण में अद्‌भुत रूप से वह सब है, जो अनुभव होता है। अर्जुन एकांत में जूझने लगे थे अपने आप से। संभवतः ऐसा इस कारण अनुभव होता है, क्योंकि कृष्ण से जुड़ी अनेकानेक अविश्वसनीय कथाएं उन्हें उस प्रभाव का कारण बनाती हैं।

"किन्तु ?···" मन तर्क करना चाहता है और बुद्धि निरंतर स्वीकार को सम्पूर्ण शक्ति से अस्वीकार करने में चेष्टारत। यह बुद्धि है या अर्जुन का अर्जुन होना—धनुर्धर का दंभ।

कहना कठिन। यह सब कुछ नहीं है। बुद्धि निरंतर तर्क किये जाती है—"सहज ही है कि किसी मनुष्य के साथ यदि असहज-सी लगनेवाली कहानियां जुड़ जायें, फिर एक के बाद एक क्रमबद्ध हो जायें तो वह अलौकिक लगता है। कृष्ण के साथ भी यही हो रहा है!" कितनी कहानियां तो जुड़ी हैं उनके साथ!

मथुरा के महाशक्तिशाली राजा कंस का संहार, कालियनाग का नाथना, पूतना-संहार, गौ चराते बालक से असामान्य क्रियाएं करने लगना!

एक के बाद एक···निरंतर···असंभव-सी लगनेवाली संभव की गयी घटनाएं! अर्जुन सो नहीं सके थे उस रात। द्रौपदी जय का सुख विखर गया था। कृष्ण-दर्शन ने अजाने ही उनके अपने पिघलकर कृष्णमय होते जाते व्यक्तित्व को विद्रोही बनाया था।

"उंहुं। इस तरह स्वीकार कर अपने को तिरोहित नहीं कर सकेंगे अर्जुन। वह विश्व के श्रेष्ठतम योद्धा हैं। सर्वमान्य, सर्वस्वीकृत धनुर्धारी। भला इस तरह किसी सफल व्यक्ति से मिलकर अपने आपको बौना कैसे अनुभव कर लें? यह मात्र उन कथाओं का ही प्रभाव है, जो कृष्ण से जुड़ी हैं और जिनके कारण पहली-पहली बार उनके सामने आनेवाला

व्यक्ति अनायास ही उनके समक्ष श्रद्धामय हो उठता है।

किस-किस तरह की घटनाएं तो हैं, जिन्होंने संयोगवश कृष्ण को अलौकिक बना दिया है। उन्हें लेकर अधिकतर गूंजता है, प्रचलित शब्द—अलौकिक।

और अलौकिक का अर्थ—ईश्वरीय।

तब क्या ईश्वर हैं कृष्ण ?

सुना यही है। बहुतेक यही कहते हैं, किन्तु बहुतेक की दृष्टि में यह अलौकिकता केवल संयोगों की देन है। बहुतेक की राय है—"कृष्ण चपल भी हैं, धूर्त भी और षड्यंत्रकारी भी।" इन संयोगों ने ही उन्हें सफलताएं दे दी हैं। इन सफलताओं के कारण वे अलौकिक कहलाते हैं!"

अर्जुन ने सम्पूर्ण शक्ति से अपने व्यक्तित्व का पिघलाव समेटा था; फिर लगा था कि निरंतर यह बात मन में पैठाकर ही समेट पाना संभव होगा कि कृष्ण अलौकिक नहीं हैं! वह असाधारण हैं। असामान्य हैं।··· महापुरुष हैं।

पर लगता था, जैसे पिघलन सिमट नहीं पा रही है। एक तर्क देकर मन का पिघलाव उस क्षण थामा था, फिर थामते रहे···थामते रहे···।

अनेक बार लगता था कि इस पिघलन से उन्हें कष्ट हो रहा है, गहन कष्ट!

पिघलन ही है या कुछ और ?

और क्या हो सकता था भला ?

कृष्ण-दर्शन से व्यक्तित्व पिघल गया या अर्जुन के श्रेष्ठ होने का दंभ आहत हुआ ?

न! दंभी नहीं हैं वह! अर्जुन ने अपने से ही चीखकर अपने को उत्तर देना चाहा है—एक बार नहीं अनेक बार!

पर भीतर से एक धीमा, बांसुरी की तरह मधुरता से गूंजता नकार उभर आता है—'क्या सच ही ठीक सोच रहे हो अर्जुन ? दंभ नहीं है ?'

वसुहोम पुनः बोलने लगा था—"प्रारंभ में मुझे लगा था महात्मन् कि मैं ही कुछ खो गया हूं; पर शीघ्र ही समझ लिया था—नहीं, बालक में ही कुछ विलक्षण है जो मन को मुग्ध कर लेता है।"

"उस रात्रि वह सारी सतर्कता व्यर्थ हो गयी थी जो मैंने अपनी ओर से कारागृह से बालक को निकालने के लिए सोच रखी थी।"

"ऐसा कैसे हुआ वसुहोम?" विदुर मुग्ध भाव से पूछे गये थे। अर्जुन को याद है, केवल विदुर ही क्यों, वे सभी तो मुग्ध-से बैठे थे। वसुहोम ने उत्तर दिया था—"कारण स्पष्ट है देव। उस रात्रि प्रकृति ने जो उत्पात किये, उन्होंने कंस के कारागृह को ही नहीं, दूर-दूर तक जन-जीवन और व्यवस्था को उलट-पुलट डाला। यमुना इतनी उग्र हुई कि लगता था कि सभी को आत्मसात् कर डालेंगी। अधिकतर सैनिक सुरक्षित स्थानों को खोजते हुए जीवन-रक्षार्थं जहां-तहां जा छिपे थे। उन्हें उस क्षण अपने जीवन के भय ने ही ग्रस्त कर लिया था। तूफान उसी तरह जोरों पर था। रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हो रहा था; पर यमुना की वेगवती लहरें पहले से अधिक उग्र होती जा रही थीं।"

"ऐसे में किस तरह यमुना पार भिजवाया गया वह शिशु?" इस बार कुन्ती ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"वही बतलाता हूं, पांडवजननी!" वसुहोम बोला फिर पूरी घटना कह सुनायी।

निर्णय में क्षण भर की देर नहीं की थी वसुहोम ने। कहा था—"मंत्रिश्रेष्ठ! बालक को लेकर मेरे साथ आने का कष्ट करें।"

देवकी चौंकीं। शक्ति-क्षय के कारण स्वर ठीक तरह होंठों से बाहर नहीं निकला। धीमी-सी आवाज़ में कहा था—"···किन्तु इस प्राकृतिक स्थिति में···?"

"शान्त हों, देवी। सब शुभ होगा!" वसुदेव उठे। बालक को गोद

में लिया। बिजली कौंधी। बालक उसी तरह प्रसन्न दीखा।

वे बाहर निकलने को हुए, तो देवकी का भर्राया स्वर पुनः उभरा था, "एक क्षण रुकिए, यादवश्रेष्ठ!"

वसुदेव थमे रह गये।

वसुहोम और अनुराधा स्तब्ध-से खड़े थे। वसुहोम को लग रहा था कि अवसर का उचित लाभ उठाकर जितना शीघ्र सम्भव हो, बालक गोकुल क्षेत्र में पहुंचा दिया जाना चाहिए।

देवकी बोली थीं—"उसे मेरे पास लाइए, प्रभु! एक पल के लिए!"

वसुदेव चमकती बिजली के प्रकाश में आगे बढ़े, बालक को देवकी की गोद में रख दिया, जो अब तक अनुराधा से सहारा पाकर बैठ गयी थीं। देवकी ने बालक को हृदय से लगा लिया, चूमा-दुलारा! विद्युत-कौंध में स्पष्ट देखा था वसुहोम ने। देवकी की आंखें वर्षा की तरह बरसने लगी हैं। वसुहोम का अपना मन भर आया था। कुछ क्षण में ही बालक पुनः वसुदेव की गोद में था। दोनों तीव्रगति से कारावास के खुले द्वार से बाहर निकल आये।

प्रकृति उसी तरह उत्पात मचा रही थी। वर्षा वैसी ही वेगपूर्ण। वसुहोम ने और वसुदेव ने एक-दूसरे को देखा, फिर तीव्रगति से चल पड़े। वसुहोम आगे-आगे हो लिया। लगता ही नहीं था कि वे किसी कारागृह से निकल रहे हैं। दूर-दूर तक न प्रहरी थे, न द्वारपाल! केवल तूफान और गर्जन-तर्जन करते बादल!

कारागृह क्षेत्र को वायुगति से पार करके वे यमुना के तट की ओर बढ़ चले थे। वसुहोम के भीतर एक संशय बिखरा हुआ था। कहीं इस तूफान के भय से वह नाविक न निकल गया हो, जो पहले से ही व्यवस्था के अन्तर्गत रखा गया था...? पर संशय व्यर्थ निकला था। नाविक अपनी जगह था और यमुना पूरे उफान पर!

वसुदेव बालक को सीने से लगाये हुए पीछे-पीछे चले आ रहे थे। वसुहोम आगे। नाविक ने जैसे ही उन दोनों को देखा, पल भर की देर न कर नौका सामने ले आया। बिना किसी बातचीत के वसुदेव बालक को

लेकर नौका में सवार हो गये और वसुहोम ने तट पर खड़े-खड़े देखा कि तूफान बनी हुई यमुना आश्चर्यजनक रूप से संयत होने लगी थीं।

"अद्भुत !" वसुहोम बड़बड़ाया था। विस्मय से आंखें फैल गयी थीं उसकी। प्रकृति उसी तरह अशान्ति से भरी हुई थी। वर्षा की गति वही, आंधी पूर्ववत् वेगवती, किन्तु यमुना की जल-लहरियां संयत ! वसुदेव की नौका तीव्रगति से किन्तु बिना किसी उथल-पुथल के यमुना के जल को चीरती जा रही थी, फिर वह दृष्टि से ओझल हो गयी।

वसुहोम वहीं खड़ा प्रतीक्षा करने लगा। मन बहुत कुछ शान्त था; पर व्यग्रता रह-रह कर लहरों की तरह मस्तिष्क में उमड़ आती ! शीघ्रातिशीघ्र वसुदेव वापिस हों, तब अगली योजना को पूर्णता मिले।

थोड़ी देर बाद वसुहोम ने यमुना की लहरों पर लौटती हुई नौका पुनः देखी। मन आनन्द से भर उठा। बिजली कौंधी तो वसुहोम को स्पष्ट दिखायी दिया था---वसुदेव लौट रहे थे।

प्रकृति का वह उफान रात्रि के दूसरे प्रहर तक चलता रहा। उस समय तक, जब तक कि यशोदा की बालिका देवकी के पास नहीं लिटा दी गयी। वसुहोम ने स्पष्ट देखा था—बच्ची को देवकी के पास लिटाते हुए वसुदेव के हाथ कांप रहे थे।

स्वयं भी क्या कम मन कांपा था वसुहोम का ? उस क्षण का स्मरण करते ही लगता है, जैसे वह सब आंखों के सामने घटने लगा है। हर बार अनजाने ही होंठ बुदबुदाकर नंद बाबा और यशोदा के प्रति श्रद्धालु होकर बड़बड़ा उठते हैं—"तुम महान् हो ! मैत्री, त्याग और मानवशुभ की वेदी पर अपनी संतान को बलि देने वाले तुम महान् हो ! निस्सन्देह पूज्य ! नमन करता हूं तुम्हें !"

यही नमन् उस क्षण वसुदेव के भीतर भी था, देवकी के आत्म में भी। वसुहोम और अनुराधा ने अन्धकार में धीमे-धीमे उठतीं देवकी की

सिसकियां स्पष्ट सुनी थीं । निस्सन्देह वे सिसकियां माता के विलाप की नहीं, उस माता के प्रति श्रद्धा की थीं, जिसकी ममता इस क्षण देवकी के पास लेटी हुई थी।

वसुहोम वापस हों, इसके पूर्व ही वसुदेव की बुदबुदाहट सुनी थी उसने। वह कह रहे थे—"हे, अनादि! मुझसे पुण्य हुआ या पाप, मैं नहीं जानता, किन्तु यह सब न चाहते हुए भी मैं यही करने के लिए प्रेरित और बाध्य हुआ? मुझे क्षमा करना!"

वसुहोम ने कुछ कहा नहीं। जानता था कि कुछ कहेगा और वसुदेव-देवकी के भीतर होते आत्मसंघर्ष को अधिक ही तीव्र कर बैठेगा! चुपचाप बाहर निकल गया। वसुदेव उनके पीछे-पीछे।

कारागृह के सभी द्वार खुले थे। वर्षा कम हो गयी थी। उसके साथ ही अन्धड़ भी थमा था। जहां-तहां जीवनरक्षार्थ जा छिपे सैनिक अब अपनी-अपनी जगहों से बाहर निकलकर निश्चित स्थानों पर पहुंचने लगे थे। अनेक आंधी-तूफान की चपेट में आकर समाप्त हो गये थे। वसुदेव को उनके कारागृह कक्ष में बन्दी बनाकर वसुहोम ने सैनिकों को इधर-उधर से बटोरकर डांटना-डपटना प्रारम्भ कर दिया। इस तरह वह महाराज कंस के प्रति अपने आपको एक दायित्वशील अधिकारी सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहा।

भोर हुए तक सभी व्यवस्था करवाकर एक सैनिक के माध्यम से मथुरापति को समाचार पहुंचा दिया गया—"देवकी ने संतान को जन्म दिया है।"

समाचार मिलते ही जैसी कि वसुहोम को आशा थी, कंस अपने तीव्र-गति रथ पर सवार आ पहुंचा।

वसुहोम ने स्वागत किया। कंस ने प्रकृति की विनाशलीला को बाद में देखना ठीक समझा था। सबसे पहले देवकी के कक्ष में ले चलने का आदेश दिया और एक बार फिर क्रूर, निर्मम बालहत्याकांड का दर्शक होने की शक्ति जुटाये हुए वसुहोम उसे देवकी के कक्ष में ले पहुंचा।

जिस क्षण कंस ने देवकी के कारागृह कक्ष में प्रवेश किया—देवकी चीख उठी थीं, "नहीं···नहीं, भइया! ···इस बालिका से तुम्हें क्या भय

हो सकता है ?···यह···यह निर्बोध···।" पर कंस ने शब्द पूरे नहीं होने दिये थे देवकी के। हिंस्रतापूर्ण विक्षिप्त मनःस्थिति में नन्हीं बालिका को माता की गोद से छीन लिया था। अगले ही पल दांतों को जोर से भींच-कर वसुहोम ने आंखें बन्द कर लीं।

क्रूर, पशु कंस ने नन्हीं बालिका को हवा में जोरों से उछाला और खिड़की के पार फेंक दिया था।

सुनाते-सुनाते वसुहोम उत्तेजित-सा हो उठा था।

और उससे भी कहीं अधिक उत्तेजित हो उठे थे पांडव ! छिः ! कितनी नृसंशता !

"धिक्कार है ! मृत्युभय ने मनुष्य को पशु बना डाला !" विदुर बोल पड़े थे। सदा ही संयत, शान्त रहने वाले महात्मा भी जैसे उस निंदित कर्म को पचा नहीं सके।

और वही क्या कोई भी कैसे पचा सकता था ? वसुहोम की आंखें छलक आयी थीं। गले का थूक निगलकर कहा था उसने—"और उसी नीच कंस को मारकर कृष्ण-बलराम ने मथुरा को स्वतन्त्र करवाया है, महात्मन् ! यशोदा की ममता और दूध से पले कृष्ण ने मातृधर्म पूरा किया है। इस अद्भुत कृत्य के कारण कृष्ण जन-जन से पूजित-प्रशंसित हुए हैं !"

निस्सन्देह उचित ही किया है कृष्ण ने ! चमत्कारपूर्ण इसीलिए लगता है कि वह सब बाल्यावस्था में ही कर दिखाया, जिसके लिए अपूर्व शक्ति की आवश्यकता होती !

और वही क्यों, इसके पूर्व भी तो निरन्तर चमत्कार ही करते रहे हैं कृष्ण ! वह सब चमत्कार नहीं तो और क्या कहलायेगा जो उनकी आयु, शक्ति, क्षमता, गुण और ज्ञान सभी दृष्टि से असामान्य है ! उनकी बाल्या-वस्था के अद्भुत पराक्रम !···असल में पराक्रमों की एक आश्चर्यजनक

श्रृंखला का नाम ही श्री कृष्ण है !…वसुहोम से केवल कंस वध की कथा ही नहीं सुनी थी पांडवों ने—अनेक बार, कृष्ण से जुड़ी अनेक घटनाएं—अनेक अवसरों पर सुनी थीं।

बहुत बार, बहुत तरह याद आते हैं कृष्ण। अर्जुन ने इस पर भी विचार किया है—क्यों ?…क्या है ऐसा, जिसे चाहकर भी विस्मृत नहीं कर पाते हैं वह ? या यह कि अर्जुन अपनी सत्ता के समक्ष किसी की सत्ता सहसा स्वीकार न पाने के दुर्गुण से ग्रस्त हो गये हैं !

उत्तर नहीं मिलता उन्हें। समय बीतता जाता है, उत्तर नहीं पाते ! कितनी घटनाएं तो बीत चुकी हैं ! बारंबार यही विचार मन में आता है, यदि श्रीकृष्ण के साथ कुछ समय, कुछ दिन रह सकें तब मन शान्त हो। या तो वह उन्हें पहचानें या अपनी पहचान उन्हें करवा दें !

राजा द्रुपद के यहां ही रह रहे हैं वह। सब सुरक्षित हैं, सब निश्चिन्त। द्रौपदी को लेकर सभी भाइयों ने समय-निर्धारण और क्रम बना लिया था। उसी क्रम में एक संयोग ऐसा आया, जब अर्जुन, युधिष्ठिर और द्रौपदी को एकांत में देखकर प्रायश्चित हेतु निकल पड़े थे।

बहुत जगह गये, बहुतेक स्थान घूमे। साधु वेष धारण कर रखा था उन्होंने। विभिन्न राज्यों की विभिन्न सीमाओं, स्थितियों, रीति-रिवाजों, जातियों के रहन-सहन, व्यवस्था और शक्ति का दर्शन भी होता गया था इसी बहाने। तभी याद हो आया था, क्यों न प्रभासतीर्थ चला जाये ? श्रीकृष्ण के सीमा क्षेत्र में ? श्रीकृष्ण से भेंट की इच्छा बलवती हुई थी। उस क्षण तो यही इच्छा थी कि श्रीकृष्ण के पास रहकर उन्हें समझ सकेंगे।

प्रभासतीर्थ की इस यात्रा ने ही अर्जुन को श्रीकृष्ण का वह दर्शन कराया था, जिसने मन-बुद्धि के सारे सन्देह दूर कर दिये। निश्चय ही श्रीकृष्ण में वह सब था, जो असाधारण ही नहीं, अलौकिक-सा लगता है।

तब भी वह अलौकिक है, यह मानने को मन तैयार नहीं हुआ था।

वहीं अनुभव हुआ था कि वह घटनाएं नितान्त सत्य हैं, जो श्रीकृष्ण से जुड़ी रही हैं, समय-समय पर कही-सुनी जाती रही हैं। निस्सन्देह वही हैं श्रीकृष्ण ! वैसे ही हैं !···

किन्तु प्रभासतीर्थ यात्रा ने ही श्रीकृष्ण को लेकर नयी गुत्थियां जनमा दीं। श्रीकृष्ण की ही बहन पर मोहित हुए अर्जुन को, श्रीकृष्ण ने जिस तरह हरण में सहायता दी वह क्या सहज समझ आने वाली बात थी ? सहायता भर क्यों ? हरण की सम्मत्ति थी वह !

हकबकाये-से रह गये थे अर्जुन ! सामने श्रीकृष्ण ही हैं या कोई और ? भला अपनी बहन का हरण कौन आयोजित करवायेगा ? विस्मित; बहुत कुछ भयभीत-से देखने लगे थे उन्हें।

"क्या सच ही ?" पूछा नहीं था, पर दृष्टि यही बोली।

श्रीकृष्ण वैसे ही मन्द-मन्द मुस्कराते हुए।

अर्जुन ने घबराहट अनुभव की थी—"हे ईश्वर ! इस यादव को कैसे समझा जाये ?" इस दृष्टि और मुसकान में न आहत भाव है, न पीड़ा, न विस्मय, न घृणा ! क्या है ? टकटकी बांधे हुए कृष्ण की पुतलियों को चपल भाव से घूमते देखते रहे।

श्रीकृष्ण ने कहा था—"कुछ पूछना चाहते हो, कुन्तीसुत !"

"हूं ?···" वह चौंके थे, फिर बुदबुदाकर कह गये—"न-नहीं···।"

"तब चलो, मैं वह सारी व्यवस्था करवाए देता हूं, जिससे तुम्हें सुभद्रा का हरण करने में सुविधा हो ?" श्रीकृष्ण ने स्नेह से उनके कंधे पर हाथ रखा था और अर्जुन खिंचे-खिंचे से चल पड़े।

एक बार पुनः नींद उड़ गयी थी अर्जुन की। बहुत दिनों से मित्र के यहां मेहमान थे। श्रीकृष्ण ने इस सरलता और सहजता से उनका स्वागत किया था कि अर्जुन का मन हलका हो रहा। तरह-तरह से उनके आमोद-

प्रमोद और सुख की चिन्ता की थी। पल-पल महक की तरह उनकी श्वासों से जुड़े रहे थे। इतने जुड़े कि अर्जुन को उनके विना अजब-सा अकेलापन अनुभव होने लगा। लगता था कि श्रीकृष्ण के विलग होते ही उनका कुछ हिस्सा अलग हो जाता है। मन-बुद्धि, आनन्द, हास्य-लास्य, सब !

मोहनी मन्त्र से हैं श्रीकृष्ण ! पर सुख मिलता है उनके साथ से, स्नेहिल समर्पण से। मन की सारी दुविधा-आशंकाएं सिमट गयी थीं। ऐसे जैसे निरन्तर हृदय के आकाश पर घिरे रहे शंका के काले वादल छंट गये हों। भोर की गुनगुनाती सूर्य-किरणें उदय हुई हों। लगा था कि श्रीकृष्ण की सरलता ही उनका सत्य है ! उनकी निर्मल, निश्छल आत्मीयता ही उन्हें मोहक बनाती है। शेष कुछ नहीं। व्यर्थ ही उन्हें लेकर उतना सोचा, व्यग्र हुए। अर्जुन के गुण-ज्ञान का उन्होंने भी सम्पूर्ण आदर किया था। उन्हें अपने बराबर माना था। अजीब-सी तुष्टि का भाव जनम आया था मन में। इस आत्मतुष्टि ने सहज कर दिया।

किन्तु तभी वह फिर प्रश्न बन गये ! एकदम अनसमझे ! सुभद्रा को लेकर जो बोले, जिस तरह बोले, जितने सहज रहे, उसने अर्जुन को पुनः उलझा डाला। मन ने कहा था—"उंहुं !···अभी तुम कुछ भी नहीं समझ सके कृष्ण को ! वह सब लौकिक नहीं है ! अपनी ही बहन के हरण की दुर्योजना बनाते हुए भी उतनी ही सहजता !···न ! नितान्त असंभव !"

और श्रीकृष्ण पुनः वही—अनसमझे ! अनजाने !

कुछ भी नहीं समझा कृष्ण को। कैसे समझें ? स्वयं पर ही चिढ़ आने लगी थी। उससे अधिक अपने आप पर। मन होता था कि इसी क्षण शैया से उठें, सीधे श्रीकृष्ण के निवास पर पहुंचे, जोरों से उनकी बांह थामें और चीखकर पूछें—"तुम क्या हो वासुदेव। इस तरह बार-बार सुलझकर उलझ क्यों जाते हो ?"

फिर अपने ही विचार पर हंस पड़े। भला यह भी क्या बालवत् विचार हुआ। श्रीकृष्ण से ऐसा व्यवहार कर सकेंगे अर्जुन ?···और वह मुसकान ?···अगर अर्जुन चीखे-गरजे, खीजे तो वह स्वभावतः हंस पड़ेंगे। स्वर माधुरी की रसवर्षा होगी—"क्या हुआ पार्थ !"

और बस !···श्रीकृष्ण के ये शब्द—अर्जुन को लगेगा कि फिर से

बह गये गंगा के शीतल जल में !···सुगन्ध से नहाये हुए ! ···अमृत में डूबे-से।

न, श्रीकृष्ण को जानना है, तो कोई और राह, कुछ और सूचनाएं, उन घटनाओं की अनेक धाराएं और कथाओं की अन्तर्कथाएं जानना आवश्यक है, जिनसे वह जुड़े रहे हैं या उनसे वे जुड़ी हुई हैं।

ऐसा कोई व्यक्ति चाहिए, जो घटना को घटना की तरह कहे, अलौकिक या चमत्कार की तरह वर्णित करके श्रीकृष्ण को ईश्वर न बनाये !

कौन हो सकता है ? अर्जुन ने माथे पर बल डाले।

बहुत-से चेहरे मिले जाने हैं यादवों, अन्धकों और वृष्टि वंशियों के। इन्हीं में से कोई एक ऐसा होगा, श्रीकृष्ण के बालपन से अब तक रत्ती-रत्ती जानता-परखता रहा व्यक्ति !

एक चेहरा दृष्टि के सामने उभर आया है···गहराता है···सरल, भोला, स्नेहिल चेहरा···!

उद्धव !

अगले ही दिन उद्धव से भेंट की थी अर्जुन ने। कहा था—"मेरे साथ वन-विहार पर चल सकोगे उद्धव ?"

उद्धव प्रसन्न हुए। कहा—"क्यों नहीं, वीरवर ! आप श्रीकृष्ण के मित्र हैं। आपको सुखी और प्रसन्न रखना हम द्वारकावासियों का धर्म है।"

वे चल पड़े थे। दूर नगर-क्षेत्र से बाहर निकलकर अर्जुन ने इच्छा व्यक्त की थी—"कुछ समय इसी रमणीक स्थान पर विश्राम किया जाये मित्र।"

उद्धव ने सम्बोधन सुना—अधिक प्रसन्न हुए। "आपने मुझे मित्र कहा, राजन ! हर्षित हूं। आपसे मिला यह स्नेह-सम्बोधन निबाह सकूं इसका पूरा प्रयत्न करूंगा।"

"तुम वैसा कर सकोगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है उद्धव !" अर्जुन ने उत्तर दिया था, "श्रीकृष्ण तुम जैसे मित्रों-स्नेहियों की शक्ति पर ही श्रेष्ठ है। कौन नहीं जानता ! तुम तो साक्षात् उनकी शक्ति रहे हो। सब कहते हैं बाल्यावस्था से ही यशोदानन्दन तुम्हारे मित्र सुख से लाभान्वित हुए हैं।"

अर्जुन ने बात समाप्त की—उद्धव को देखा तो अनुभव हुआ था जैसे यह प्रसंशा उन्हें भाई नहीं। पर चेहरे का भाव छिपाकर सावधानी से उठ पड़े थे उद्धव, "मैं व्यवस्था करवाता हूं कुन्तीपुत्र !" एक ओर चले गये।

अर्जुन सोचने लगे थे किस तरह श्रीकृष्ण के विगत को लेकर उद्धव से कथा कहलवाएंगे ? फिर राह निकाल ली थी। याद हो आया था कि श्रीकृष्ण द्वारा सागर पार से आनेवाले विदेशियों को कुशस्थली से निकालने की घटना का विवरण लेना ठीक रहेगा। क्या कुछ नहीं सुना जाता था उस घटना को लेकर ? जितना सुना था, जिस तरह सुना था, सब चमत्कार

की तरह लगा था ! कुछ सैनिकों को साथ लेकर ही श्रीकृष्ण ने पणियों[1] के अनेक जलयानों पर अधिकार कर लिया था। यही नहीं, अनेक जलयान यान्त्रिकों को भी बन्धनयुक्त किया था। कुशस्थली[2] और प्रभासतीर्थ क्षेत्रों को विदेशियों से मुक्त कराया था। उस क्षेत्र के सैकड़ों ही जनांचलों में उनकी पूजा ईश्वर की ही भांति होने लगी थी…कैसे ? विदेशी पणियों की अपार शक्ति, सेना और युद्ध-साधनों को किस तरह समाप्त किया होगा श्रीकृष्ण ने ? कृत्य जितना वीरतापूर्ण, उतना ही चमत्कारिक ! पर वह चमत्कार किया कैसे ? या उस वीरता के पीछे की नैतिकता क्या है ?

उद्धव ने डेरा लगवा दिया था। अर्जुन से कहा था—"चलिए राजन् ! विश्राम कीजिए !…"

अर्जुन चले, साथ उद्धव थे।

डेरे में पहुंचते ही प्रश्न कर दिया था—"श्रीकृष्ण ने दुष्ट पणि राक्षसों को किस तरह पराजित किया था उद्धव ? बहुत सुना है उस घटना के बारे में। यह भी सुना है कि कुशस्थली की मुक्ति में तुम भी साथ ही थे ?"

"हां, पाण्डुपुत्र ! उस विलक्षण पर चमत्कारपूर्ण युद्ध-अभिमान में मैं

---

१. पणि : इन्हें अनेक ग्रन्थों में पाणि, पुण आदि नामों से भी पुकारा गया है। ये लोग आर्यों की भांति देवताओं को बलि नहीं देते थे। वे हिंसक, क्रूर और बहुत सीमा तक शोषक व्यापारी भी कहे जाते रहे हैं। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृति से ऐसे संकेत मिले हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पणि दूर समुद्र पार, संभवत: फिनीशिया से आते थे। 'महाभारत' में पारसीक नामक एक देश-जाति का भी वर्णन आया है। इन्हें विदेशी कहा गया है। इसी तरह महाभारत में ही पह्लव नामक एक विदेशी जाति का भी वर्णन है, इसे म्लेच्छ बतलाया गया है। ऋग्वेद में पाणि जाति के लोगों को राक्षस सम्बोधित किया गया है। ये जहाजी व्यापारी और बहुत हद तक लुटेरे भी थे। इनकी अरब सागर में निरंतर समुद्र यात्राएं चलती रहती थीं। ये लोग अपनी बस्तियां भी जहां-तहां बसा लिया करते थे। रॉबिन्सन की हिस्ट्री ऑफ फोनेशिया के अनुसार, इन पणि, पाणि या पुणजन कहलाने वालों ने फोनेशिया में अपना मुख्य बसाव रखा था। इनकी अनेक बस्तियां जिस दिशा में बसी थीं, वह अधिकतर यूरोथियन सागर के किनारे थे।

२. कुशस्थली : इसे पणि, पाणि या पुणों ने अपनी बस्ती/बन्दरगाह बना रखा था। श्रीकृष्ण ने इन्हें यहां से खदेड़कर द्वारकापुरी बसायी थी।

भी गोविन्द के साथ था।" उद्धव ने कहना प्रारम्भ किया था। अर्जुन ने दृष्टि गड़ा दी थी उनके चेहरे पर।

बोलते समय उद्धव के चेहरे पर तेज को क्रमशः तीव्र होते अनुभव किया था अर्जुन ने। देखते रहे, सुनते रहे। जितना-जितना सुना, लगा कि कृष्ण का व्यक्तित्व वायु, पृथ्वी और आकाश में अनन्त दिशाओं तक व्याप्त होने लगा है। जितना चातुर्यपूर्ण लग रहा था उन्हें, उतना ही चमत्कार-पूर्ण! बीच-बीच में जिज्ञासा भी करने लगते—"क्या, ऐसा ही हुआ था?"

और उद्धव सहज, भोलेपन से कहते—"हां, देव! ऐसा ही हुआ था, बिलकुल ऐसा ही। जब बलभद्र को साथ लिए राजा जरासंध द्वारा मथुरा पर आक्रमण के भय से श्रीकृष्ण इस दिशा में चले आये, तब बहुत समय तक उनकी कोई कुशल-सूचना न पाकर राजा उग्रसेन, वसुदेव, देवी देवकी और हम सब बहुत चिन्तित हुए। तरह-तरह के समाचार फैल गये थे। कोई समाचार शुभ नहीं। तभी एक गुप्तचर से समाचार मिला था कि वे कुशल हैं और कुशस्थली के वन-क्षेत्रों में विचर रहे हैं।" एक गहरी सांस ली थी उद्धव ने—"गुप्तचर की सूचना ने भी मन आश्वस्त नहीं किया। महाराज उग्रसेन ने मुझे आदेश दिया था कि मैं स्वयं कुशस्थली पहुंचकर सत्यता ज्ञात करूं।"

अर्जुन अधिक ध्यानस्थ होकर सुनने लगे। चमत्कार कही जाने वाली कथा प्रारम्भ हो गयी थी।

मगधराज जरासंध अपने दामाद कंस के संहार पर क्रुद्ध होकर विक्षिप्तों की तरह मथुरा की ओर बढ़ चला था। भयावह शक्ति और सेना से सम्पन्न जरासंध की यह क्रोधाग्नि मथुरा को नष्ट कर डालेगी, इस भय ने श्रीकृष्ण और बलराम को अनायास ही मथुरा के यादवों में धिक्कार का पात्र बना दिया! सहज मानव स्वभाव की भयग्रस्तता थी वह! जरासन्ध ने उग्रसेन के पास मांग भेजी थी कि उसे कंस के हत्यारे चाहिए!

दोनों ग्वाले !

श्रीकृष्ण ही थे, जिन्होंने सबसे पहले चिन्तित राजा और व्यग्र प्रजा को शान्त किया था।

जरासन्ध अपनी विशाल सेना के साथ मथुरा की ओर बढ़नेवाला है ! इस समाचार ने समूची मथुरा नगरी को ही नहीं, जनपद के प्रत्येक अंचल में आतंक और भय की लहर फैला दी थी ! जरासंध की अभूतपूर्व शक्ति और प्रभाव मात्र से जनांचल में कम्पन हो गया था। विशाल भरत खंड में दो शक्तियों से टकराने की कल्पना किसी में नहीं थी। कुरुकुल के महाव्रती भीष्म और मगधराज जरासंध।

कंस-वध ने उसे प्रतिशोध के ऐसे अन्धड़ में लपेट लिया था कि उत्तेजित सम्राट सम्पूर्ण यादव जाति के प्रति घृणा से भर उठा। वह क्षण निस्सन्देह दहला डालने वाला था, जब मथुरा नगर में जरासंध के दूत ने प्रवेश किया।

जरासंध, अपने दामाद की हत्या से उत्तेजित होकर क्या कुछ विनाश कर सकता है, यह सभी को कल्पना थी, किन्तु किसी को यह कल्पना तक न थी कि सब कुछ इतनी शीघ्र हो जायेगा !

जरासंध के विरुद्ध सहसा कोई राजा या गणसंघ का नेता सामने नहीं आ सकता था। तीन अक्षोहिणी सेना का स्वामी होने के अतिरिक्त वह अत्याधुनिक हथियारों के एक बहुत बड़े संग्राहक सम्राट के नाते जाना जाता था। यही नहीं, भरत खंड के अस्सी से अधिक राज्यों ने उसकी शक्ति-सत्ता स्वीकार कर ली थी। बहुतों के साथ उसके पारिवारिक सम्बन्ध भी थे। कंस ने बड़ी योग्यता के साथ जरासंध को वश में रखने भर के लिए उसकी दो बेटियों से विवाह कर रखा था और अब वही कंस-वध के कारण विधवाएं हो गयी थीं।

श्रीकृष्ण और बलराम ने अपनी ओर से कंस की विधवाओं अस्ति और प्राप्ति के लिए मथुरा के राजमहल में ही निवास की व्यवस्था करवायी थी। यहां तक आश्वासन दिया था कि महाराज उग्रसेन के बाद उन्हीं में से एक के पुत्र को मथुराधिपति बनाया जाना निश्चित है, किन्तु अस्ति और प्राप्ति ने अपने आपको बहुत अपमानित अनुभव किया था। कंस-वध

के कारण वे उतनी आहत नहीं थीं, जितनी कि इस विचार से थीं, कि साधारण ग्वालों की कृपा पर महाबली जरासंध की बेटियां जीवनयापन करनेवाली हैं।

मथुरावासी श्रीकृष्ण और बलराम से उस समय बहुत प्रसन्न हुए थे, जब उन्होंने मथुरा को कंस के आततायी शासन से केवल मुक्ति ही नहीं दिलायी, अपितु महाराज उग्रसेन को काराग्रह से मुक्त करके राज्य सौंपा। सबने कृष्ण की स्तुति की थी। उन्हें एक त्यागी और वीर के नाते स्वीकारा गया था। वसुदेव, उग्रसेन आदि ने कंस-वध के समाचार से जरासंध पर होने वाली प्रतिक्रिया का भी अनुमान कर लिया था, किन्तु उस समय यह सोचकर बात को तूल नहीं दिया कि संभवतः अस्ति और प्राप्ति स्थिति को समझकर अपने उत्तेजित पिता को सम्हाल लेंगी, इसी आशा से राजा उग्रसेन ने दोनों बहनों द्वारा यह प्रस्ताव किये जाने पर कि वह अपने पिता के घर जाना चाहती हैं, उन्हें स्वीकृति ही नहीं दी, सम्पूर्ण सम्मान सहित मगध भेज दिया।

"बस, वृद्ध राजा उग्रसेन ने यही सबसे बड़ी भूल की थी, धनंजय!" उद्धव ने कहा था—एक क्षण सोचा फिर गहरा सांस लेकर बुदबुदाये थे—"किन्तु वासुदेव कहते हैं कि वह भूल नहीं थी, वह भक्तिव्य था, जिसके कारण उन्हें अन्य बहुत से धर्म पूरे करने थे।"

"वह किस तरह?" उत्सुक दृष्टि से उद्धव को ताकते हुए अर्जुन ने प्रश्न किया था।

उद्धव ने उत्तर दिया—"यशोदासुत का विचार है कि मनुष्य की जिस समय जो प्रवृत्ति होती है, वह किसी आगत का आधार बनती है। एक बार वह हंसकर बोले थे—"उद्धव! तनिक विचार करो, यदि महाराज उग्रसेन अस्ति-प्राप्ति को मगध न भेजते, तब जरासंध क्यों मथुरा पर आक्रमण करने की भूमिका बनाता? यह भूमिका न बनती, तब कुशस्थली का मुक्ति

अभियान किस तरह आयोजित होता ?" बोलते-बोलते उद्धव सरलता-पूर्वक मुस्कराने लगे थे—"अतः सब कुछ अनायोजित होते हुए भी आयोजित-सा लगता है पाण्डुपुत्र ! कृष्ण को समझना दुष्कर है। वह कितने सतर्क और तीव्रबुद्धि हैं, इसकी कल्पना भर की जा सकती है ! वहां तक पहुंचना असंभव है। अनेक बार तो वह जिस तरह और जैसे निर्णय लेते हैं, वे मानव मस्तिष्क की उपज नहीं लगते !"

"ऐसा कैसे कह सकते हो उद्धव !" अर्जुन ने प्रश्न किया। इस प्रश्न से अधिक कृष्ण को लेकर अधिकाधिक जान-समझ लेने की इच्छा ही थी। लगा था, जैसे उद्धव को इस हेतु चुनकर अर्जुन ने बहुत समझदारी से काम लिया है।

उद्धव ने कहा था—"महाराज उग्रसेन को केवल मथुराधिपति ही नहीं बना दिया था कृष्ण ने, वह राजा बने रहें, इसके लिए भी उनके प्रयत्न कम नहीं रहे !···अस्ति-प्राप्ति को मगध भेजने के जब राज्यादेश हुए कृष्ण सहसा गंभीर हो गये थे। उन्होंने मुझसे ही कहा था—"उद्धव ! तुम स्वयं अस्ति-प्राप्ति को सम्मानसहित मगध पहुंचाओ और महाराज जरासन्ध की प्रतिक्रिया से सूचित करो !"

"इस तरह मुझे मगध भेजकर श्रीकृष्ण ने कितनी दूरदृष्टि से काम लिया था, वही आपको बतलाता हूं कुन्तीपुत्र !" उद्धव कहने लगे थे।

मगधराज जरासंध को बेटियों के नगरागमन की पूर्व-सूचना मिल चुकी थी। स्वागतार्थ स्वयं ही राजधानी के द्वार तक पहुंचे थे वह, जिस क्षण रथ से उद्धव और अन्य मथुरवासियों के साथ दोनों विधवा रानियों ने पृथ्वी पर पांव रखे, उद्धव ने देखा था कि राजसी तेज से भरा हुआ जरासंध का चमकता चेहरा धुंधला गया है।

अस्ति और प्राप्ति श्वेत कपड़े पहने हुए थीं। श्रृंगार-प्रसाधन से हीन उनके सुन्दर युवा चेहरों पर वैधव्य पतझर की तरह फैल चुका था। मगध-

राज के लिए उन्हें लगातार देख पाना असंभव हो गया।

किन्तु बेबसी थी। दोनों युवा बेटियां पिता को सामने पाकर सहसा उनके हृदय से जा लगीं और फूट-फूट कर रोने लगीं।

उद्धव ने सहमी दृष्टि से देखा—शक्तिशाली जरासन्ध के मुंह से सांत्वना के बोल भी नहीं निकल पा रहे थे। चौड़े कन्धोंवाला वह दीर्घकाय राजा किसी क्रोधित गज की तरह शान्त खड़ा था। यह शान्ति उस भयावह आगत का स्पष्ट संकेत थी, जिसकी आशंका उसी क्षण की गयी थी जब मथुर पहुंचकर कृष्ण-बलराम ने कंस को समाप्त किया।

बहुत सुना था महाबली जरासन्ध को लेकर और उससे भी अधिक महसूस हुआ था तब, जब जरासन्ध को साक्षात् देखा! वैभवशाली मगध-राज की सम्पन्नता और शक्ति उस धरती के कोने-कोने से झरती लग रही थी, जिस पर वे सब आ पहुंचे थे। दूर तक उनके सतर्क अंगरक्षक बिखरे हुए थे। मगध के भव्य और विशाल राजगृहों की एक श्रृंखला आकाश को छूती हुई दृष्टि सीमा के पार तक फैली थी। उद्धव ने पल भर में अनुमान कर लिया था कि शक्ति सम्पन्नता को लेकर जितना कुछ सुना है, कम ही है। मगध उससे भी कहीं आगे और अधिक!

जरासन्ध ने विधवा बेटियों को जैसे-तैसे आश्वस्त किया, फिर वे सब राजभवन की ओर बढ़ चले।

जिस-जिस राजपथ या नगर मार्ग से विधवा युवतियों को लिये हुए जरासन्ध निकले, उन-उन मार्गों पर गहरा सन्नाटा पुता रहा। लगता था कि अपनी बेटियों के विधवा हो जाने की पीड़ा सम्पूर्ण मगध देश ही भोग रहा है।

उस स्थिति ने उद्धव को भी कम शोकग्रस्त नहीं किया था, किन्तु बेबसी थी। कंस के अत्याचार, अनाचार और राजनीतिक दुरावस्था के कारण ही मथुरावासियों को उससे मुक्ति लेनी पड़ी! वह एक सामाजिक बेबसी थी। किन्हीं दो स्त्रियों के सुहागबिन्दु का विचार करते हुए, सैकड़ों लोगों के जीवन से कंस को खेलने की अनुमति भला किस तरह दी जाती? कंस वध हुआ—उद्धव के विचार में वह कृष्ण को ही नहीं, सम्पूर्ण मथुरा या यादव गणसंघ की बेबसी थी।

मगध के राजभवन में प्रवेश किया था सभी ने। सेवक, अंगरक्षक जहां-तहां पहुंच गये थे। मथुरा से आये यादवों और उद्धव के लिए उपयुक्त निवास-व्यवस्था कर दी गई थी। अगली सुबह मगधराज जरासन्ध के सामने प्रस्तुत किये गये मथुरावासी। जरासन्ध के विशाल भेंट-कक्ष में पहला कदम रखते ही उद्धव ने समझ लिया था—जरासन्ध बहुत क्रोधित हैं! आदरपूर्वक अभिवादन किया, एक ओर खड़े हो रहे।

जरासन्ध के एक ओर कंस की दोनों विधवाएं खड़ी थीं। उनकी आंखें जितनी लाल नहीं थीं, उतना चेहरा सुर्ख था। स्पष्ट दीख रहा था, वे क्रोधित ही नहीं प्रतिहिंसाग्रस्त हो उठी हैं।

आश्चर्य हुआ था उद्धव को। कंस-वध के बाद तो वे दोनों इतनी क्रोधित नहीं लगी थी, पर अब ?

अब क्रोधित ही नहीं प्रतिहिंसाग्रस्त ! जबड़े कसे हुए, आंखें सुलगती हुईं !

और मथुरा रहीं तब तक अस्ति-प्राप्ति के चेहरों पर केवल दुःख अभिव्यक्त हुआ था। आश्चर्य! पर मन ने सावधान किया था उद्धव को—"इसमें आश्चर्य-जैसी कोई बात नहीं है उद्धव ! यह कैसे भूलते हो तुम कि वे एक राजा की बेटियां हैं ! नीतिज्ञ और समझदार ! उस क्षण उन्हें किसी तरह मथुरा से मुक्ति लेनी थी और अब वे सुरक्षित हैं। महाशक्तिशाली अपने पिता की शरण में आकर पूर्णतः सुरक्षित हैं ! अब वे अपने आपको अभिव्यक्त कर सकती। चुनौती दे सकती हैं।

अपने ही भीतर से मिला उत्तर समाप्त हो, इसके पूर्व ही सचमुच चुनौती बन गयी थीं दोनों। अस्ति ने कहा था—"कैसी विचित्र बात है कि इस भरतखंड पर मगधराज की बेटियों को दो ग्वाले विधवा बना दें और समय का एक शक्ति सम्पन्न राजा ठगा-सा देखता रह जाये।

उद्धव ने अपने भीतर सकपकाहट अनुभव की। अस्ति के शब्दों में प्रतिशोध से कहीं अधिक घृणा व्यक्त हुई थी !

मगधराज ने थूक का घूंट निगला। आंखों में कुछ लपटें और कौंधीं—जबड़े जोर से भिच गये। कनपटियों का तनाव स्पष्ट दीखने लगा।

"समय के साथ हर लोहे में जंग लग जाता है, बहिन !" यह

प्रास्ति का संवाद था। व्यंग्य और तिलमिलाहट से भरा हुआ। "पितृ जरासन्ध अब वृद्ध हो रहे हैं। उन्हें युद्ध आदि संघर्ष की स्थितियां अब नहीं सुहातीं। नहीं चाहते कि व्यर्थ ही किसी से उलझें!"

अस्ति थूकती हुई हंसी में हंस पड़ी थीं—वही तो। मैं महाराज कंस की हत्या के बाद निरंतर यही सोच रही थी प्राप्ति, क्या कारण है कि पितृ मथुरा नहीं आये? अब समझ रही हूं। संभवतः तुम उचित ही कहती हो। मगधराज जब शान्तिप्रियता की उस सीमा पर पहुंच गए हैं, जो राजाओं को शोभा देती है। जो क्षत्रियोचित कम और ब्राह्मणोचित अधिक होती है। क्यों राजन!"

"अस्ति!" चीख पड़ा था जरासंध। उद्धव को लगा था कि एक घनगर्जना हुई है। यह गर्जन निस्संदेह जरासन्ध की उस आश्चर्यजनक शरीर शक्ति का भी प्रतीक था, जिसके लिए वह दूर-दूर तक चर्चित रहा था।

"क्रोधित न हो, मगधराज!" अस्ति ने उसी तरह तिलमिलाये और तिलमिला डालनेवाले शब्दों का बहाव जारी रखा था—"हम विधवा स्त्रियां इसके अतिरिक्त और विचार ही क्या कर सकती हैं? विशेषकर उस स्थिति में, जबकि हमें ज्ञात है, हम महाबली जरासंध की पुत्रियां हैं। गौरवशाली मगध साम्राज्य की राजपुत्रियां हैं, फिर भी राजन यदि विचार करने में हमसे कोई धृष्टता हुई हो, तो हमें क्षमा कर दें, क्यों प्राप्ति!"

"बहुत हुआ, अस्ति। बहुत हुआ।" मगधराज गुर्राये थे—"अब तुम अपने निवासगृहों में जा सकती हो। हमें विचार करने दो।"

"पर पितृ···!"

"सुना नहीं तुमने?" जरासंध गरज पड़े थे।

अस्ति-प्राप्ति सहम गयीं। सिर झुकाया और चुपचाप कक्ष से बाहर निकल गयीं। अब वे गिने-चुने मथुरावासी थे, जो उद्धव सहित जरासन्ध के सामने उपस्थित थे। मगधराज ने क्रमशः उन सभी को देखा, फिर प्रश्न किया—"तुममें से उद्धव कौन है?"

"मैं हूं राजन्!" एक कदम आगे बढ़कर शीश झुका दिया था उद्धव

ने। जरासन्ध ने सिर से पैर तक उद्धव को इस तरह देखा, जैसे छील डाला हो। उद्धव ने बदन में एक सनसनी अनुभव की। जैसे-तैसे लड़खड़ाहट को सम्हाले खड़े रहे। जरासन्ध ने अन्य सभी मथुरावासियों को बाहर जाने की आज्ञा दी थी, फिर एक गहरा सांस लेकर कहा था, "हूं, तो तुम हो उस बूढ़े, थके हुए उग्रसेन के दूत !" सहसा कुछ क्षण के लिए चुप हो रहा था वह।

उद्धव बिना कुछ बोले चुपचाप खड़े रहे।

थोड़ी देर बाद जरासंध ने पुनः बोलना प्रारम्भ किया—"गोकुल के उन ग्वालों की बहुत चर्चा सुनी है हमने। तनिक बतलाओ तो दूत ! कैसे हैं वे ? सुनते हैं, एक पहलवानी करता है, भोजनभट्ट है और दूसरा चपल, छली और षड्यंत्रकारी।"

"क्षमा करें मगधराज ! आपने उन दोनों को लेकर कुछ विपरीत सोच लिया है।" उद्धव ने विनम्रता से कहा था—"वसुदेव के वे दोनों पुत्र योग्य तो हैं ही, वीर और पराक्रमी भी हैं। उन्होंने बाल्यावस्था में ही ऐसे अनेक काम किए हैं, जो बड़े-बड़े अनुभवी और अधिक वय वाले व्यक्तियों के लिए भी संभव नहीं। इसीलिए मथुरा भर में नहीं, सम्पूर्ण यादव गणसंघ में उनकी स्तुति होती है। महाराज कंस को हत करने का कारण केवल मात्र यही था कि उन्होंने राजकीय अव्यवस्था फैला रखी थी…।"

"चुप रहो दूत !" सहसा जरासन्ध की गरज ने बात काट दी थी उद्धव की—"हम तुमसे उन ग्वालों की प्रशंसा और कीर्तिगाथा सुनने के लिए नहीं, यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि काल ने उन मूर्खों की बुद्धि कैसे खराब कर दी, जो वे मगधराज जरासन्ध को विस्मृत करके उनके प्रिय मित्र और सम्बन्धी कंस को हत कर बैठे ? वीर कंस को उन्होंने किस तरह हत किया है, हमें ज्ञात हो चुका है। छलपूर्वक किसी की हत्या कर डालना वीरता नहीं, निर्लज्जता और कायरता कहलाती है।"

उद्धव के लिए असह्य हो गए थे वे शब्द। श्रीकृष्ण और बलभद्र को बाल्यावस्था से देखा-जाना है। उनके नेह से सराबोर है वह। जितना देखा-समझा है, उसमें वैसा कुछ भी नहीं है, जैसा और जितना जरासन्ध ने कह डाला है। विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया था—"क्षमा करें महाराज ! आपने

सूचनाओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व का जो मूल्यांकन कर दिया है; वह उचित नहीं है। निश्चय ही श्रीकृष्ण और बलभद्र को लेकर आपके पास असत्य सूचनाएं आयी हैं सम्राट। वे न तो कायर हैं, न छली। यदि छल और कायरता का मूल्यांकन आप नीति से करें तो।"

"चुप रहो!" एक बार पुनः चीख पड़े थे जरासन्ध। क्रोध और आवेश से उनके नथुने फूल आए थे—"तुम लोगों ने जाने की व्यवस्था कर दी गयी है।" सहसा उठ पड़े थे वह—"जितना शीघ्र हो सके तुम हमारी क्रोधाग्नि से बच निकलो और उन बालकों के साथ-साथ उस बूढ़े और मूर्ख राजा उग्रसेन से कह देना—मगधराज अपनी बेटियों को विधवा बनाने वाले उन दुर्बुद्धि ग्वालों को छोड़ेगा नहीं। यदि मथुरावासी तथा यादव अपना शुभ चाहते हैं, तब चुपचाप उन ग्वालों को मथुरा से धक्के मारकर निकलवा डालें अन्यथा एक न एक दिन जरासन्ध का क्रोध यादवों को जड़ से नाश कर देगा।"

उद्धव कुछ कहे या उत्तेजित जरासन्ध के क्रोध को शान्त करने का प्रयास करें, इसके पहले ही जरासन्ध तेजी से कक्ष के बाहर निकल गए थे।

उद्धव लौटे, मथुरा पहुंचते ही कुछ घबराहट और चिंता के साथ मगधराज जरासन्ध की चुनौती श्रीकृष्ण के पास पहुंचा दी। कहा—"कृष्ण! वह बहुत क्रोधित हैं और मुझे लगता है कि अस्ति-प्राप्ति से मिलनेवाली निरंतर उत्तेजना एक न एक दिन उन्हें मथुरा पर आक्रमण के लिए बाध्य कर देगी।"

कृष्ण शान्त थे। मुस्कान उसी तरह चेहरे पर। दृष्टि में वही चंचलता। पूरा समाचार शब्दशः सुनने के बाद केवल एक ही प्रतिक्रिया हुई थी उन पर। हौले से अपना एक होंठ दबाया था दांतों में, फिर कहा था—"यह सब तो पहले ही अनुमानित था उद्धव! इसमें तुम नयी सूचना क्या लाए हो?"

उद्धव चकित, "नयी सूचना?"

"मैंने तुम्हें नई सूचनाओं के लिए ही तो मगध पठाया था?" श्रीकृष्ण बोले।

"कैसी सूचनाएं?"

"मगध की शक्ति, सामर्थ्य आदि की सूचनाएं।" श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया—"क्या मगधराज जरासन्ध ने तुम्हें नगर-भ्रमण भी नहीं करवाया?"

"नगर-भ्रमण?" उद्धव ने कुछ बौखलाकर उत्तर दिया था—"तुम नगर-भ्रमण की बात कर रहे हो कृष्ण। वहां तो यह स्थिति थी कि अधिक रुककर जरासन्ध की क्रोधाग्नि में भस्म हो जाओ और तुम हो कि…।"

कृष्ण हंसे—"तो यों कहो कि तुम भाग आए?"

उद्धव कुछ चिढ़ उठे थे। सारी राह जरासन्ध के जिन शब्दों को लेकर गंभीरता और उत्तेजना से भरे चले आए थे, वही सब सुन-जानकर कृष्ण न केवल हलकी-फुलकी बातें कर रहे थे, बल्कि वैसे ही बने हुए थे, जैसे गोकुल में यमुना तट पर अठखेलियां करते रहते थे। तनिक भी गंभीर और सावधान नहीं। कुछ गुस्से के साथ कहा था उद्धव ने—"कभी-कभी तुम

पर क्रोध आने लगता है यशोदासुत ! क्या तुम समझते नहीं कि मथुरा, गोकुल आदि नहीं भरतखंड का हृदय ही खतरे में पड़ गया है।"

"जानता हूं, किन्तु उस सबके कारण तुम्हारी तरह उत्तेजित और चिन्तित हो जाने से क्या होगा उद्धव ?" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"और जहां तक तुम्हारे क्रोध की बात है, सो यही कहूंगा कि तुम अपनी आदतें छोड़ नहीं पा रहे हो। गोकुल में जिस तरह बहुत दूध पीकर भी तनिक-तनिक सी बात पर क्रोध किया करते थे, यहां भी करते हो। जितना दूध-दही खाते-पीते हो, कुछ भी अंग नहीं लगता।"

"ओह ! तुम श्रीकृष्ण…!" उद्धव और झुंझलाये। श्रीकृष्ण से स्नेहपूर्वक कन्धे पर हाथ रखा, बोले—"व्यग्र मत हो, उद्धव ! सब ठीक हो जाएगा।"

उद्धव ने चकित होकर उन्हें देखा।

श्रीकृष्ण बोले थे—"जरासन्ध मुझ से और बलभद्र भइया से ही तो रुष्ट हैं। उसकी शान्ति और मथुरा के शुभ का रास्ता मैंने सोच लिया है।"

"वह क्या ?"

"हम दोनों ही भाग जाएंगे यहां से।" श्रीकृष्ण ने निर्णय सुनाया।

"इससे क्या लाभ होगा ?"

"कंस को तो हमने हत किया है न ?" श्रीकृष्ण बोले—"जरासन्ध को हम दोनों पर क्रोध है। जब हम ही न होंगे तो क्रोध किस पर करेगा ?"

"वह सम्पूर्ण मथुरा पर टूट पड़ेगा।" उद्धव ने कहा था।

"ऐसी भूल वह नहीं करेगा, उद्धव !" श्रीकृष्ण शान्तिपूर्वक बोले—"वह कभी नहीं चाहेगा कि राजाओं और विद्वानों में उसकी निन्दा हो। निर्दोषों पर अपनी क्रोधाग्नि बरसाकर भला वह किस कुतर्क से सम्राट बना रहेगा ?"

"मेरी समझ में तो तुम्हारी यह योजना आयी नहीं कृष्ण !" उद्धव ने कहा, फिर कुछ भुनभुनाते हुए बात पूरी की थी—"इस तरह तो जरासन्ध ने तुम्हें लेकर जो कुछ कहा है, वही सच हो जाएगा।"

"क्या ?"

"यह कि कायर हो तुम।" उद्धव ने उसी खीज के साथ कह डाला।

कृष्ण हंसे—"यदि लाखों व्यक्तियों के शुभार्थ कोई एक व्यक्ति कायर कहलाये, तो दोष नहीं हुआ उद्धव ! इसे बुद्धिमान व्यक्ति विवेकपूर्ण निर्णय ही कहेगा। बुद्धिमत्तापूर्ण कायरता, उद्दंडतापूर्वक आत्महत्या करने और हत्याकांड को निमंत्रण देने से कहीं श्रेष्ठ है।"

उद्धव निरुत्तर हो रहे थे।

कृष्ण ने बताया था—"महाराज उग्रसेन से मैंने स्वीकृति प्राप्त कर ली है। कल प्रातः ही मैं और कर संकर्षण[1] यहां से चल पड़ेंगे!"

उद्धव कुछ नहीं कह सके थे।

यही हुआ। उद्धव जागे, तब ज्ञात हुआ था, श्रीकृष्ण और बलभद्र मथुरा छोड़कर कहीं चले गये हैं। कहां? न किसी को सूचना दी थी। समाचार सभी ओर बिखर गया—श्रीकृष्ण और बलराम मगधराज के भय से भाग खड़े हुए।

उद्धव को अच्छा नहीं लगता था, जब-जब मथुरा में श्रीकृष्ण और बलराम को लेकर चर्चा होती। उन्हें भगोड़ा कहा जाता। निन्दा भी की जाती और उपहास भी होता, किन्तु उत्तर देने या तर्क करने योग्य किसी के पास कुछ नहीं था। चुपचाप श्रीकृष्ण और बलराम को लेकर कही-सुनी जानेवाली बातें अपने तन पर कोड़ों की मार की तरह सह लिया करते। इस स्थिति का लाभ यादव सामंतों ने खूब उठाया था। उनके विचार में अब कृष्ण-बलराम फिर कभी मथुरा लौटने वाले न थे।

जरासन्ध के आने, आक्रमण करने का समाचार धीमे-धीमे फीका पड़ने लगा था। संभवतः गुप्तचरों के माध्यम से मगधराज को सूचना मिल चुकी थी—कृष्ण-बलराम मथुरा छोड़कर भाग खड़े हुए।

---

१. कर संकर्षण : बलराम का मूल नाम।

जरासन्ध सुनकर हंसा था। अस्ति-प्राप्ति को कुछ शान्ति मिली। पर प्रतिशोध की ज्वाला उसी तरह धधक रही थी। यादवों के प्रति जरासन्ध और उसकी बेटियों को उसी तरह घृणा थी।

कृष्ण-बलराम कहां हैं? न कोई सूचना मिलती थी, न समाचार। यदा-कदा देवकी उद्धव को बुलाकर पूछताछ किया करतीं। किसी बार गोकुल से नंद बाबा का दूत आ पहुंचता—"यशोदा बहुत चिन्तित रहती हैं उद्धव! कृष्ण कहां हैं? कुशल से तो हैं?" उद्धव बेबसी के साथ कहलवा दिया करते—"कोई सूचना नहीं है, पर आश्वस्त हों यशोदा माता। कृष्ण जहां भी होंगे, कुशल से होंगे।"

कृष्ण की अनुपस्थिति में उन सामन्तों को बहुत लाभ मिला, जो वसुदेव के विरोधी थे। वृष्णिवंशी यादवों में बहुत पहले से फूट पड़ी थी। मथुराधिपति भोजवंशी यादव भोजवंशी यादव हुआ करते थे। परम्परा के अनुसार भोजवंशी यादव ही सभी यादवों के राज्यों के गणसंघ का प्रमुख हुआ करता था; किन्तु कुछेक वर्षों से यह गणसंघ भीतर-ही-भीतर खोखला होता जा रहा था। यादवों की फूट ने उन्हें एक दीखते हुए भी एक नहीं रहने दिया था। परिणामतः प्रभासतीर्थ स्थित बहुत-सा यादव-क्षेत्र और कुशस्थली का यादव राज्य सात्यकि और अक्रूर दोनों के ही हाथ से खिसक गया। कुशस्थली सहित समुद्र तट के एक बहुत बड़े क्षेत्र पर विदेशी पणियों ने अधिकार कर लिया। सात्यकि और अक्रूर आदि यादव राजा प्रभासतीर्थ क्षेत्र में भाग खड़े हुए। अब वह नाममात्र के राजा रह गये थे। भोजराज कंस से उन्होंने गणसंघ का मुखिया होने के नाते सहायता याचना भी की थी, किन्तु कंस ने सुना-अनसुना कर दिया। पणियों को कंस, जरासन्ध, चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल आदि ने भरत खंड के अनेक राज्यों में अपना व्यापार बढ़ाने की स्वीकृति दे दी। इस तरह पाणि धीमे-धीमे अनेक राज्यों में अपनी संस्कृति-धर्म आदि का प्रचार तो करने ही लगे, साथ-ही-साथ उन्होंने आर्थिक व्यवस्था पर भी अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया।

कृष्ण-बलराम इसी समय में जरासन्ध से बचते हुए विभिन्न राज्यों में घूम रहे थे। किसी ऋतु में वह गोमांतक पहुंचते, किसी ऋतु में कुशस्थली। मथुरा की सूचनाएं वे जहां-तहां से जुटा लिया करते थे।

इसके विपरीत मथुरावासी उनसे एकदम कटे हुए थे। न कृष्ण की कोई सूचना थी, न बलराम की कोई अद्‌भुत पौरुष-कथा! उद्धव विभिन्न लोगों से सम्पर्क साधते, दूर-दराज से कोई आ पहुंचता, तो मिल-जुलकर जानकारी करने की चेष्टा करते। पूरा विश्वास था कि कृष्ण-बलराम जहां भी होंगे, उनका कोई-न-कोई अद्‌भुत कृत्य उन्हें बहुत दिनों गुप्त नहीं रहने देगा। इसी सिलसिले में समाचार मिला था उन्हें—"कृष्ण नामक एक ग्वाले को विदर्भ क्षेत्र में ढूंढ़ा जा रहा है। कहते हैं कि वह मगध-नरेश जरासन्ध के दामाद का हत्यारा है!"

उद्धव ने सुना। निश्चिन्त हुए। प्रसन्नमन देवकी के पास जा पहुंचे थे। वह बेटों को लेकर सदा ही दुखी रहा करती थीं। जान-बूझकर समाचार आधा सुनाया था। बोले—"यह समझो, माता! तुम्हारा पुत्र कुशल-पूर्वक है।"

"पर वह है कहां उद्धव!" देवकी ने आकुल स्वर में प्रश्न किया था। आंखों से कम दीखने लगा था उन्हें। वर्षों के कारावास ने मन, दृष्टि, शरीर सभी तरह से तोड़ डाला था देवकसुता को। प्रतिपल आशंकित रहना स्वभाव बन गया था। निरन्तर अपनी सन्तानों का अपनी ही आंखों के सामने वध देखते रहने के कारण हर पल डरी-डरी रहती थी। तनिक-सा सुखद या दुखद समाचार मिलता और देवकी की आंखें झरने लगतीं। उद्धव से यह समाचार पाकर कि कृष्ण कुशलपूर्वक हैं, वह सदा की तरह बह आयी थीं—"कहां है कृष्ण? भरत खंड के किस क्षेत्र में?"

"यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता, देवी!" उद्धवने उत्तर दिया था—"किन्तु इतना निश्चित है कि कृष्ण-बलराम विदर्भ या कुशस्थली··· किन्हीं राज्य या नगर में कुशलपूर्वक हैं!"

देवकी एक गहरा श्वास छोड़कर रह गयी थीं। होठों-ही-होठों में बुद-बुदाती हुई—"परमात्मन्! वह जहां भी हो कुशल से हो!"

उद्धव लौटकर राजा उग्रसेन के पास पहुंचे थे। समाचार सुनाया। कृष्ण के प्रति उपकृत थे वह। मन-ही-मन श्रद्धा करने लगे थे। कहा था—"गुप्तचर भी यही कुछ कहते रहे हैं, उद्धव! कृष्ण या तो कुशस्थली में हैं या विदर्भ में।"

उद्धव चुप खड़े रहे।

उग्रसेन ने आदेश दिया था—"मेरी इच्छा है कि तुम ज्ञात करो! स्वयं ही विदर्भ और कुशस्थली पहुंचकर पता लगाओ। संभव हो तो उनसे भेंट भी करो।"

उद्धव ने सिर झुकाकर स्वीकार किया। उसी दिन चल पड़े।

विदर्भराज भीष्मक के राज-दरबार में पहुंचकर उद्धव ने समाचार भिजवाया था—"महाराज को सूचना दो, मथुराधिपति राजा उग्रसेन का दूत भेंट के लिए समय चाहता है।"

मथुरा के राजपरिवार से बहुत पुराने सम्बन्ध थे भीष्मक के। सूचना मिलते ही भीष्मक ने उद्धव को बुलवा लिया था। उद्धव ने अपना परिचय दिया, फिर आने का कारण बतलाया—"हमें ज्ञात हुआ है, महाराज! यादवपति श्रीकृष्ण और बलराम आपके राज्य में आये हुए हैं। महाराज उग्रसेन की इच्छा थी कि उनसे मेरी भेंट करवा दी जाये।"

भीष्मक के चेहरे पर हल्का धुंधलापन बिखर गया था। एक ओर बैठे थे युवराज रुक्मी। वृद्ध राजा ने पुत्र की ओर एक दृष्टि डाली, फिर उत्तर दिया—"कृष्ण और बलराम यहां आये तो थे उद्धव! किन्तु अधिक दिन रुके नहीं। एक दिन प्रातः ही न जाने कहां चले गये। उनकी खोज में तो हम स्वयं चिन्तित हैं।"

उद्धव ने सुना। निराशा का हल्का-सा झोंका भी लगा था, किन्तु अपने आपको सहेज लिया। इस सूचना से यह तो सिद्ध हो ही गया था कि कृष्ण-बलराम सुरक्षित रूप से यहां-वहां यात्राएं कर रहे हैं। कहा—"जानकर पीड़ा हुई महाराजा! आपको कष्ट दिया, इसके लिए क्षमा चाहता हूं।"

राजा भीष्मक ने कुछ नहीं कहा। बोले थे—"कुछ समय कुंडिननगर[1]

---

१. कुंडिननगर—तत्कालीन विदर्भ राज्य की राजधानी। वर्तमान आन्ध्र प्रदेश में बीदर से कुछ परे—गोदावरी नदी से लगभग ५ मील दूर कुंडिलवती नामक स्थान।

में विश्राम करो, दूत! फिर तुम्हारी यात्रा का प्रबन्ध कर दिया जायेगा।"

उद्धव के लिए राजभवन के ही अतिथि-गृह में निवास की व्यवस्था की गयी। कृष्ण आये और चले गये? बिना राजा भीष्मक से मिले, उन्हें कोई सूचना दिये, चले गये, यह अकारण नहीं हो सकता। अवश्य ही कोई विशेष कारण रहा होगा। और फिर याद आ गयी थी। कृष्ण को लेकर मिली सूचना। विदर्भ में जरासन्ध की जड़ न होते हुए भी धीमे-धीमे पनप रही थी। चेदिराज[1] शिशुपाल के मित्र थे युवराज रुक्मी। शिशुपाल के माध्यम से ही कभी मगध सम्राट जरासन्ध से भेंट हुई थी उनकी। अच्छे मित्र हो गये थे दोनों। यों भी चेदि, मगध और विदर्भ की मित्रता राज-नीतिक रूप से बहुत प्रभावकारी थी। जितनी गहरी मित्रता थी, उससे अधिक गहरा राजकीय सम्बन्ध था। निश्चय ही श्रीकृष्ण को किसी संकट का आभास मिला होगा और उन्होंने चुपचाप विदर्भ से खिसक जाने में कुशल समझी।

उद्धव शान्त और निश्चिन्त भाव से आसन पर लेट गये थे। सांझ ढल चुकी थी। शीघ्र ही रात्रि के भोजन का बुलावा आनेवाला था। उद्धव ने निश्चय किया था कि रात्रि-भोजन के पश्चात् अच्छी निद्रा लेकर विदर्भ से सीधे कुशस्थली चल पड़ेंगे। वहां भी श्रीकृष्ण के होने की संभावना थी। बहुत दिनों से सुन रहे थे उद्धव—श्रीकृष्ण जमकर किसी स्थान पर नहीं रहे हैं। वह निरन्तर घूम रहे हैं और हर बार कुशस्थली अवश्य ही आ पहुंचते हैं।

भोजन से निवृत्त होकर उद्धव पुनः शयन-कक्ष में पहुंचे। रात्रि का पहला प्रहर प्रारम्भ हुआ था। साथ आये यादव सैनिकों को भी विश्राम के

---

१. चेदिराज : चेदि वर्तमान मध्यप्रदेश का चन्देरी नगर है। शिशुपाल वहां का राजा हुआ करता था।

लिए जाने का आदेश दे दिया था। अगली सुबह एक लम्बी यात्रा प्रारम्भ होनेवाली थी।

अभी आसन पर लेटे ही थे कि चौंक गये। प्रकोष्ठ की हल्की रोशनी में उन्हें लगा कि कुछ हलचल हुई है। उद्धव तुरन्त उठे, "कौन ?"

उत्तर में स्वर नहीं उभरा। एक नारी आकृति मुख्य द्वार पर आ खड़ी हुई, "विदर्भराज की कन्या तुमसे भेंट करने आयी हैं दूत !"

"विदर्भराज की कन्या !" उद्धव माथे पर सिकुड़नें डालकर अचरज से बुदबुदाये, फिर उठ खड़े हुए। तुरन्त क्या कहें या क्या कहना चाहिए, यह भी नहीं सूझा था उन्हें। शयन-कक्ष में प्रकाश कम था। उद्धव ने प्रकाश करना चाहा, स्वर उठा, "शिश···शि्···! नहीं, प्रकाश मत करो दूत। राजकुमारी इसी क्षीण प्रकाश में बात करना चाहती हैं।"

सब कुछ बहुत रहस्यमय जान पड़ा था उद्धव को। सकपकाये-से खड़े रह गये।

हल्की रुन-झुन उभरी। राजकुमारी भीतर आ गयी थीं। साथ में वह सेविका या सहेली थी, जो सूचना देती रही थी। उद्धव जैसे-तैसे साहस बटोरे खड़े रहे। मन में कहीं हलका-सा डर भी उभर आया था। विदर्भ-राज के महल में वह अतिथि हैं। स्थिति भी दूत की···और राजसुता उनसे भेंट करने, उनके शयन-कक्ष में आ पहुंची हैं। डर अनायास ही क्रोध बनने लगा था। बोलें या बहकें, इसके पूर्व ही राजकुमारी बोली थीं—"तुम··· तुम उद्धव ही हो ना ?"

"जी···? जी हां कुमारी ! मेरा नाम उद्धव ही है।"

"श्रीकृष्ण के बालमित्र।"

"जी,···जी हां।" उद्धव हड़बड़ाये हुए बोले।

"उन्होंने यही कहा था : संभवतः तुम अवश्य ही खोजते हुए आ पहुंचोगे।" राजकुमारी ने भीगे स्वर में कहा।

"किन्होंने; राजकुमारी !"

"श्रीकृष्ण ने।"

"श्रीकृष्ण ने ?" उद्धव बुदबुदाये, फिर बातों में रुचि लेने लगे। समझ गये थे गोपियों पर मोहिनी-मंत्र फेरनेवाले श्रीकृष्ण ने संभवतः इधर

भी जाने-अनजाने मोहिनी मंत्र फेर दिया है।

राजकुमारी ने कहा था—"यहां रहना यशोदानन्दन के लिए शुभ नहीं रहा था। अत: उन्होंने जाने का निर्णय लिया। जाते समय तुम्हें स्मरण किया था उद्धव! कहा था कि समाचार मिला तो तुम अवश्य ही मिलने आओगे। उस स्थिति में तुम्हें बतला दिया जाये कि वह कहां मिल सकेंगे।"

"कहां, कुमारी!" उत्सुक हो उठे उद्धव। आवेश में एक कदम आगे बढ़ आये। आवाज़ भर्रा गयी थी।

"वह प्रभासतीर्थ की ओर गये हैं।" राजकुमारी ने सूचना दी थी—"तुम वहीं उनसे भेंट कर सकोगे।"

उद्धव प्रसन्न हुए। सन्तुष्ट भी। कुशस्थली पहुंच गये होते, तो फिर भटकना पड़ता। उस बीच श्रीकृष्ण न जाने कहां निकल जाते।

उद्धव ने कुमारी को धन्यवाद दिया। उत्तर में राजकुमारी ने कहा था—"उसकी आवश्यकता नहीं है उद्धव। मिलो तो अपने बालमित्र को मेरी ओर मे एक सूचना अवश्य दे देना।"

"क्या राजकुमारीजी?"

"कहना मैं सदा ही उन्हें स्मरण करती हूं।" राजकुमारी ने कहा। उद्धव को लगा था कि आवाज़ कुछ भरी हुई है। याद हो आया था उन्हें। गोकुल जब-जब जाते थे, तब-तब गोपियां इसी तरह पूछा करती थीं श्रीकृष्ण को। इसी तरह नेहभरी कहतीं कि वह उन्हें बहुत स्मरण करती हैं; किन्तु श्रीकृष्ण ने हर बार कहा था—"मैं केवल स्मरण नहीं करता उद्धव। सदा उनके साथ ही रहता हूं और वे सदा मेरे साथ रहती हैं।" एक बार उद्धव इस उत्तर से चिढ़ गये थे। कहा था, "बस...बस, वासुदेव। यह शब्दरास बहुत हुआ। सच क्यों नहीं कहते कि तुम अपनी स्नेहिल सखियों को बिसरा बैठे हो।

उत्तर में श्रीकृष्ण हंस दिये थे। कहा था—"तुम नहीं समझोगे, उद्धव। आत्मशक्ति हो तो पृथ्वी की दूरी नेह को दूर नहीं कर सकती। विश्वास करो, मुझसे जो नेह करते हैं—सदा मेरे साथ रहते हैं और मैं सदा उनके साथ होता हूं।"

लगा था कि बहुत उलझी हुई बात है। कौन माथापच्ची करे। बहस नहीं की थी। और आज पुनः उद्धव के सामने वही सन्देश पहुंचाने का दायित्व है—"विदर्भराज की कन्या रुक्मिणी तुम्हें बहुत स्मरण करती हैं वासुदेव।" उद्धव जानते हैं कि इस सन्देश के उत्तर में क्या कहेंगे कृष्ण ?

एक गहरा सांस लिया, बोले—"आश्वस्त हों, विदर्भसुता। निश्चित ही आपका सन्देश यशोदानन्दन को पहुंच जायेगा।"

"जानती हूं।" राजकुमारी ने उत्तर दिया, फिर विदा हो गयीं।

उद्धव पुनः शैय्या पर आ लेटे। अब सहजता से नींद नहीं लगनेवाली थी। इस उत्साहवर्धक समाचार ने मन भर दिया था—"श्रीकृष्ण प्रभासतीर्थ में हैं। वहीं मिल जायेंगे।" यह भी क्या कम सुखकर लग रहा था कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से उद्धव को लेकर मैत्री और विश्वास के शब्द कहे। भरोसा रखा कि उद्धव उनकी सुधि लेने अवश्य ही आयेंगे।"

मन अनायास ही प्रश्न कर उठा था—"श्रीकृष्ण ने यह केवल अनुमान पर कहा या वह जानते थे कि उद्धव आयेंगे ?"

आश्चर्यजनक लगा था उन्हें। श्रीकृष्ण के अनुमान सदा ही इतने सत्य क्यों हुआ करते हैं ? कोई एक घटना तो है नहीं ? उद्धव को बिलकुल छोटी आयु से ज्ञात है, श्रीकृष्ण आगत का अनुमान इतना निश्चित करते हैं जैसे सब कुछ देखते जानते हों। उन्हें उस रात अनचाहे ही वह घटना याद हो आयी थी, जब एक बार घोर जलवृष्टि के कारण गोकुल ही नहीं, तमाम जनक्षेत्र मृत्यु-संकट झेलने लगा था।

यह संकट आये, इसके पूर्व ही श्रीकृष्ण को जैसे सब कुछ ज्ञात हो गया था।

उद्धव को स्मरण है, उस समय सूर्य प्रखर रूप से तेजस्वी थे। वर्षा हो सकती है या आंधी आ सकती है, यह कल्पना भी असंभव थी।

हर भोर की तरह उस दिन भी गायें लेकर निकल पड़े थे वे सब। श्रीकृष्ण बलभद्र के साथ निकलते, फिर अवसर पाकर उनसे कुछ दूर हो लेते। गोप बालकों का समूह श्रीकृष्ण जिस ओर जाते, उसी ओर चल पड़ता था। बहुतेक कारण थे इसके। श्रीकृष्ण की अद्‌भुत विशिष्टता।

गौ चरने लगतीं और श्रीकृष्ण उस समूह के बीच बैठकर मीठी, रसीली चुटकियां लेने लगते। किसी बार मनसुखा को कुरेदते, किसी बार उद्धव को। गोप बालकों में श्रीकृष्ण कई बालकों से कम आयु के थे, किन्तु वे सभी श्रीकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व को स्वीकार चुके थे। श्रीकृष्ण तीव्रबुद्धि तो थे ही, दुस्साहसी भी थे। कोई ऐसा साथी न था, जिसे श्रीकृष्ण ने किसी-न-किसी उलझन या विपत्ति से बचाया न हो। सहज ही था। श्रीकृष्ण के प्रति सभी के मन में जितना आत्मीयतापूर्ण स्नेह था। उससे कहीं अधिक सम्मान और विश्वास की भावना थी। तर्कातर्क में भी अद्‌भुत थे वह। आकर्षण और रसमाधुर्य इतना शक्तिशाली था कि पहली बार में ही किसी को भी मोहित कर लेना उनके व्यक्तित्व की सामान्य प्रक्रिया थी।

बचपन में गोकुल की जो छोटी-सी बस्ती श्रीकृष्ण के उत्पातों से चिढ़कर यशोदा के पास उनकी शिकायतें पहुंचाया करती थी। बहुत तरह श्रीकृष्ण की अद्‌भुत क्रियाओं और व्यक्तित्व ने धीमे-धीमे उनके स्वीकार में बदल दी थी, कहीं बस्ती, हर आयु, हर वर्ग के नर-नारियों में लोकप्रिय ही नहीं, स्नेहभाजन बन गये थे श्रीकृष्ण। किसी परिवार में कोई सुख-दुख की घटना हो, श्रीकृष्ण सेवा में आगे, सबसे आगे रहा करते। दुख में समानभागी होकर दुख उठाया करते। सुख में सर्वाधिक सुखभाव से सक्रिय हो जाते।

उद्धव को स्मरण है, गोकुल का जनजीवन श्रीकृष्णमय हो गया था। स्थिति यहां तक पहुंच चुकी थी कि जिस दिन श्रीकृष्ण न दीखते, बस्ती में चर्चा बिखर जाया करती—"कहाँ गया नंदलाल।"

यह आत्मा का अभाव उन्हें श्रीकृष्ण दर्शन के लिए व्यग्र बना दिया करता। अनेक बार श्रीकृष्ण के निर्णयों में गोकुलवासियों ने परस्पर होते रहनेवाले छुटपुट झगड़ों की राह पा ली थी, न्याय मिल गया था। श्रीकृष्ण कब, किस अनजाने पल उनके भीतर अनिवार्यता बनकर पैठ रहे, किसी को

स्मरण ही नहीं रहा था, फिर बलभद्र और श्रीकृष्ण का स्नेह बहुत प्रसिद्ध था। गोकुलवासी परस्पर इस बन्धु-प्रेम का उल्लेख प्रतीक के रूप में करने लगे थे। बलभद्र जितने सहज थे, श्रीकृष्ण उतने ही असहज। बलभद्र उत्तेजित होकर जितने क्रोधित हो सकते थे, श्रीकृष्ण के चेहरे और मनोभावों से क्रोध, पीड़ा या बेचैनी पहचान पाना असंभव था। श्रीकृष्ण बलभद्र से सहमते तो नहीं थे; किन्तु अग्रज के प्रति सीमाएं बनाकर अवश्य चलते। बलभद्र को स्नेहपगी बातों से फुसलाया-बहकाया जा सकता था; किन्तु श्रीकृष्ण की दृष्टि हर छल और षड्यंत्र को उधेड़ती-सी दीखती थी। न कोई साथी मन के भीतर की बात उनसे छिपा सकता था, न कोई गोपी अपने भीतर उनके प्रति उमड़ आया स्नेह दबाये रख सकती थी! फुर्ती, चंचलता और चपलता में भी श्रीकृष्ण के बराबर ठहरना असंभव था। वार्ताकौशल और अभिनय की असामान्य क्षमता थी उनमें।

कभी-कभी ऐसी बातें करने लगते थे, जिनसे वृद्धायु अनुभव भी सहमकर रह जाया करता। सुनकर भी सहसा विश्वास न होता कि जो कुछ सुन रहे हैं, वह श्रीकृष्ण के होंठों से झर रहा है। अनेक बार ऐसी बातें कहते, जिनके अर्थों में बुद्धि का सागर सामान्य बुद्धि को कहीं, गहरे, बहुत गहरे डुबा लिया करता। इस तरह के अवसरों पर अक्सर वृद्ध स्त्री-पुरुष यह कहकर अपना बचाव कर लिया करते—"यशोदा और नन्द का बालक अद्भुत है···वह विद्वानों-ब्राह्मणों जैसी बातें करता है!"

पर जब-जब कोई वृद्ध विद्वान, ब्राह्मण या ऋषि ग्राम-क्षेत्र में आ निकलते, श्रीकृष्ण उनकी सेवा में जुट जाया करते। उनसे चर्चा करते। चर्चा भी ऐसे विषयों पर, जो किसी-किसी बार माथे से ऊपर होकर निकल जाया करती। विचित्र श्रीकृष्ण! एक साथ श्रीकृष्ण के भीतर, बालक, युवा और वृद्ध का यह दर्शन ही उन्हें अलौकिक बना दिया करता था।

विविध रूपी कृष्ण! बालक की तरह सरल, वृद्ध की तरह अनुभवी, ऋषि की तरह सबके भीतर रहकर भी कहीं नहीं, सूर्य की तरह पराक्रमी और तेजयुक्त, चन्द्रमा जैसे शीतल और जल जैसे सरल! कौन से श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण हैं, निश्चय करना कठिन हो गया था। व्यक्तित्व की इस बहुकोणीय देह में कुछ साधारण या सामान्य है, विश्वसनीय नहीं रहा।

एक ही शब्द कहकर श्रीकृष्ण को समझा भी जा सकता था, उनका व्यक्तित्व वर्णन भी किया जा सकता था। यह कि मानो ओर का छोर, अद्भुत है, अलौकिक है।

फिर घटनाओं के ऐसे सिलसिले लगे कि यह अलौकिक, ईश्वर में बदलने लगा। श्रीकृष्ण की दृष्टि, स्वर, शब्द सभी कुछ केवल श्रद्धा बनकर रह गये। उन्हें लेकर दर्शन का आनंद मिलने लगा, उनसे विलग रहकर विरह की पीड़ा सताने लगी, उन्हें देखकर जान पाने की उलझन होने लगी। उन्हें पाकर, खो देने का भय लगने लगा। उन्हें खोकर निस्सारता अनुभव होने लगी।

सहज ही था कि ऐसे श्रीकृष्ण के आगे-पीछे सब घिरे रहें। उसी दौर की बात है—

वे सब श्रीकृष्ण को टकटकी बांधे हुए इस तरह देख रहे थे, जैसे एक और सूर्य के दर्शन कर रहे हों। जितने चत्मकृत, उतने आनंदित। जितने आनंदित, उतने ही विस्मृत। सांवले श्रीकृष्ण ने चंचलता से उन सभी को देखा था, फिर बोले थे— "अब बोलो, किसे बुलाऊं ?"

उद्धव ने हौले से होंठ भींचे, कुछ सोचा, दृष्टि दूर जंगल में जहां-तहां बिखरी गौओं पर दौड़ायी, कहा, "उसे बुलाओ, कदली को ! वही सबसे दूर है।"

और श्रीकृष्ण ने कदली नाम की गौ को देखा, वह दूर, जंगल के भीतर समाकर लगभग श्वेत धब्बे जैसी दीखने लगी थी। अगले ही क्षण मुस्कराकर उन्होंने चपलता से बांसुरी होंठों पर लगायी। एक धुन वातावरण में बिखरा दी।

वे सभी कदली की ओर देख रहे थे। श्रीकृष्ण बांसुरी की विशिष्ट ध्वनियां निकालकर विभिन्न गौओं को बुला सकते हैं, यह सुना था उन्होंने। पूछ लिया था—"ऐसा कर सकते हो तुम, तब करके बतलाओ।" और

वह एक-एक कर गौ को विशिष्ट ध्वनि निकालकर बुला रहे थे। शर्त यह

रखी थी उन्होंने, जो गौ आयेगी, उसे कुछ-न कुछ खिलाना होगा। बुलाहट प्रारंभ होने से पूर्व गोप बालकों ने बड़ी संख्या में हरी घास जुटा ली थी। जो गौ आती, उसे हरा चारा दिया जाता।

इस बार कदली के लिए धुन निकली थी बांसुरी से। पर उद्धव को लगा था कि कदली की ओर देखते-देखते वे सभी उस लय में रच-बस गये हैं। आंखें गौ की दिशा में जड़ी थीं; पर स्वरसुरा से नहायी हुई, देखकर भी देख पाने में असमर्थ सी। सारा शरीर अजब-सी मादकता से भर उठा था। मस्तिष्क आनंद की तरंगों से अठखेलियां करता हुआ। और श्रीकृष्ण की वांसुरी निरंतर गूंजती हुई।

सहसा धुन तोड़ दी थी श्रीकृष्ण ने।

"क्या हुआ ?" उनमें से कई एक-साथ बोले।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"अब नहीं बजाता।"

"क्यों ?"

"कदली आ तो गयी है।" श्रीकृष्ण ने वृक्ष के तने से उसी तरह टिके-टिके आराम से उत्तर दिया।

उन सभी ने चौंककर देखा, सच ही तो ! कदली उनके पास, एक तरह से उनके समूह में ही आ खड़ी हुई थी। आंखों में उनके-अपने मन जैसी मुग्धता किये हुए ! उद्धव उत्साहित होकर खड़े हो गये थे—"आश्चर्य ! यह तो बड़ी हठी है, कृष्ण ! तुमने इसे भी नेह-बन्धन में बांध लिया।"

"नेह का बन्धन होता ही ऐसा है उद्धव !" श्रीकृष्ण ने मुसकराकर कहा था—"या तो तुम बंध जाओ या तुम किसी को बांध लो।"

कुछ गोप बालक उठकर अपना वायदा निबाहने लगे थे। वे कदली को स्नेह से चारा खिला रहे थे।

श्रीकृष्ण उठे और धीमे-धीमे यमुना-तट की ओर चल दिये। उद्धव

और कुछ साथी बालक पीछे।

तट किनारे खड़े श्रीकृष्ण देर तक टकटकी बांधे हुए अनत आकाश को देखते रहे। सहसा मुड़े, कहा—"उद्धव! शीघ्रता करो! गौओं को बुलाओ और तुरंत गोकुल की ओर चलो।"

"पर अभी तो दोपहर है कृष्ण!" उद्धव ने उत्तर दिया था—"अभी से गौएं लेकर गांव पहुंचे तो···।"

"व्यर्थ समय नष्ट मत करो, उद्धव! ···" श्रीकृष्ण के स्वर में स्नेह-मिश्रित दबाव था, "शीघ्रता करो! मैं पहले गोकुल की ओर पहुंचता हूं। हमें शीघ्र ही गांव और यह क्षेत्र खाली देना कर होगा।"

"क्यों?"

"वह सब बाद में बतलाऊंगा!" श्रीकृष्ण मुड़कर तीव्रगति से गांव की दिशा में चल पड़े थे। जाते-जाते कहते गये—"स्मरण रहे, तनिक भी देर किये बिना सभी गौओं और ग्वालों के साथ गांव की ओर आओ! जितनी शीघ्र हो सके, उतना शीघ्र!"

उद्धव हकबकाये से खड़े रह गये। कुछ झुंझलाहट से भरे हुए। श्रीकृष्ण का यही स्वभाव उद्धव को नहीं रुचता। अकारण ही रहस्यमयता बना देते हैं। किस कारण भर दोपहर वे सब गांव की ओर मुड़ जायें? मन हुआ था कि वैसा न करें, किन्तु अगले ही क्षण मस्तिष्क सक्रिय हुआ। इतने प्रभावी ढंग से कि उसने इच्छा पर भी वश कर लिया था। वही करना होगा जो श्रीकृष्ण कह गये हैं! न कर सके; तो कुछ-न-कुछ गड़बड़ हो जायेगी! श्रीकृष्ण व्यर्थ शब्द बोलने के आदी नहीं हैं।

"सुनो! गोप बंधुओ! सुनो!" उद्धव जोर-जोर से चिल्लाते हुए गोपों के समूह की ओर लपक पड़े।

वे सब चकित होकर उद्धव को देखते रहे।

उद्धव ने हांफते-हांफते श्रीकृष्ण के जाने और जाने से पूर्व गांव, गौओं सहित लौटने की सूचना दी। कहा था—"श्रीकृष्ण, गोकुल की ओर चले गये हैं। अब हमें भी शीघ्र ही गांव की ओर चल पड़ना चाहिए···गौएं बटोरो!"

"पर उद्धव···! कारण?" कोई एक चिल्लाया था।

"ज्ञात नहीं, पर श्रीकृष्ण ने कहा है, तनिक भी देर न की जाये अन्यथा हम सब किसी आपत्ति में फंस जायेंगे।" अभी उद्धव के शब्द पूरे ही हुए थे कि सहसा सबने देखा, आकाश पर तेज, गहरी और काली घटाएं उमड़ आयी हैं! उद्धव एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गये थे। आश्चर्य! पल भर पूर्व ही तेजस्वी सूर्यकिरणों से यह पृथ्वी खंड झिलमिला रहा था और अब? अविश्वसनीय-सा लगा था उन्हें! इस गति और चमत्कार की तरह अचानक अन्धकार घिर आना, वेगवती वर्षा की आशंका? क्या श्रीकृष्ण ने यह सब समझ लिया था?

पर किस तरह समझा होगा? ऐसा कोई भी संकेत तो नहीं था प्रकृति की ओर से, जिसके कारण समझा जा सके कि वैसा प्राकृतिक तूफान आने को है?…तब?

ग्वालों का समूह आकाश पर घुमड़ते, गरजते बादलों से आतंकित जल्दी-जल्दी इधर-उधर दूर तक बिखरी हुई गायों को बटोरता हुआ अब एक जगह आ पहुंचा था। बलभद्र भी आ पहुंचे थे। उद्धव बोले—"चलो, शीघ्रता करो! जल्दी ही तेज वर्षा होने को है।"

बलभद्र की दृष्टि ने श्रीकृष्ण को खोजा, पूछें कि उद्धव बोल पड़े—"यशोदासुत गोकुल की ओर जा चुके हैं, बलदेव!"

"अच्छा हुआ।" बलदेव के चेहरे पर आयी घबराहट कुछ टली। वे सब तीव्रगति से गांव की ओर बढ़ चले।

और उसी गति से बढ़ चला घटाओं से बरसता अन्धकार! इतना गहरा और घना कि लगता था कि एक-दूसरे के चेहरों को वह ठीक तरह नहीं देख पा रहे हैं। सहसा सूर्य के माथे पर सन्ध्या उतर आयी थी। हवाएं ठंडी हो गयी थीं। वातावरण में अजब-सी शीतलता बिखरने लगी थी।

वे बढ़े जा रहे थे। गौओं को तेज़-तेज़ हांकते हुए। लगता था कि वे तीव्रगति बादलों से मुकाबला करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

गोकुल क्षेत्र अभी दूर था। उद्धव निरंतर एक ही अचरज से उलझे हुए। भला श्रीकृष्ण को किस तरह ज्ञात हो गया कि जल्दी ही ऐसी आश्चर्यजनक प्राकृतिक उथल-पुथल होनेवाली है?

कभी लगता था कि यह अलौकिक है ! और कभी मन कहता—मात्र संयोग ! अभी इसी उहापोह में ही थे कि उन्होंने देखा, दूर जंगल की ओर तेज़ हलचल हो रही थी । गोकुल की ही दिशा !

वे सब चकित होकर घटाओं के धुंधलाये प्रकाश में उसी ओर देखने लगे थे; पर अधिक देर तक नहीं देखा जा सका। उन्हें अपनी सुधि लेनी पड़ी। तेज़ वर्षा आरंभ हुई। आकाश चीखता हुआ जैसे धरती पर टूटने लगा था । इतनी तेज़ वर्षा कि उन सबकी चाल सहज नहीं रही । दस कदम ही आगे बढ़ पाये होंगे कि पृथ्वी जलमग्न होती जान पड़ी । वे गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते-से भागने लगे थे । उनके साथ-साथ गौएं भी ।

अब न तो परस्पर बात करने की स्थिति शेष रही थी, न ही कुछ सुन-समझ पाने की। वेगपूर्ण जल धरती पर फैल नहीं रहा था, लगता था कि धीमे-धीमे धरती को ही डुबाने लगा है। उससे कहीं अधिक तीव्र आंधी के थपेड़े ! ये थपेड़े जल की धारों के साथ अनेक कोड़े की मार जैसे शरीर पर पड़ने लगे थे ।

"रक्षा करो, प्रभु ! यह कैसा प्रकोप ?" वे हांफते हुए भीगे जा रहे थे गोकुल की ओर और उनसे कहीं अधिक शक्ति से बरस रहा था जल ।

"हे, ईश्वर !" कोई तेज़ कराहता-सा स्वर गूंजता ।

"कृपा ! ···कृपा करो, प्रभु !" कोई और थकी-टूटती-सी आवाज़ ।

वे सब घटा के अन्धेरे में कब उस हलचल के पास जा पहुंचे थे, उन्हें स्वयं ही ज्ञात न हुआ । श्रीकृष्ण का स्वर सुना था उन्होंने । तीव्र आकाश-वाणी-सा गूंजता हुआ स्वर। तारक स्वर—"सब शीघ्रता से मुड़ो, दायीं ओर ! ···जल्दी !"

वे सब मुड़े । इस तरह जैसे यंत्र के अंग रहे हों । किसी यांत्रिक शक्ति से ही संचालित !

उद्धव ने देखा था कि श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गोकुल के नर-नारियों का

एक बड़ा झुंड है। वे सब आवश्यक सामान लिए हुए थे। उन्हीं की तरह लड़खड़ाते, भागते, भयभीत और चिन्तित दीख रहे थे। उन सभी के पंजे धरती पर बिखरे हुए जल में डूब रहे थे। आबाल, वृद्ध, वनिताएं, छोटे-बड़ों के अनेक समूह, स्त्रियां अपने गोद के बच्चों को आंचल में छिपाये हुए वर्षा की तीव्र जलधाराओं से बचाने का व्यर्थ, बचकाना प्रयत्न कर रही थीं।

उद्धव ने पूछना चाहा था—"कहां, किधर जा रहे हैं हम लोग ?"

पर प्रश्न होठों में ही मुंदा-घुटा रह गया। श्रीकृष्ण की ही आवाज़ आयी था—"चिन्तित न हों आप लोग ! हम शीघ्र ही सुरक्षित स्थान पर पहुंच जायेंगे। बहुत शीघ्र।"

रह-रहकर बिजली कौंधती। तेज़ प्रकाश से जलमग्न धरती नहा जाती। इस प्रकाश में ही राह मिलती, पर अधिक देर तक सूझना भी कठिन हो जाता था। वर्षा की निरंतर जलधाराओं ने पलकों और पुतलियों के बीच जैसे एक जाल तान दिया था। पल-पल पलक पोंछते हुए वे सब आगे बढ़ते, अगले ही पल फिर से पलक जलमग्न हो जाती। वे थक रहे थे। वे डर चुके थे और बहुत सीमा तक वे सभी निराश भी हुए जा रहे थे, किन्तु श्रीकृष्ण उसी गति और विश्वास से एक विशिष्ट दिशा की ओर बढ़ते हुए।

बलभद्र ने प्रश्न कर दिया था—"हम लोग कहां जा रहे हैं कृष्ण।"

"एक सुरक्षित स्थान पर।"

"पर···पर इस प्रकृति-प्रकोप से सुरक्षा कहां मिल सकती है हमें ?" बलभद्र ने कुछ उत्तेजित स्वर में प्रश्न किया था।

"ऐसा एक स्थान है।" श्री कृष्ण ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था—"अब अधिक दूर नहीं है।"

जल बढ़ता जा रहा था। उसके साथ-साथ पानी उनकी पिंडलियों से ऊपर आने लगा था, किन्तु वर्षा की गति थमने का कहीं कोई आसार नहीं।

सहसा श्रीकृष्ण थम गये। बिजली कौंधी। सबने देखा, श्रीकृष्ण सामने ऊंचाई की ओर उंगली से संकेत कर रहे थे। "वह, वह रहा गोवर्धन। हमारा शरणास्थल। हम वहीं जायेंगे।"

श्रीकृष्ण की वह उठी हुई अंगुली ! आज भी उद्धव को लगता है, जैसे उस अंगुली के आधार ने ही उन सबका जीवन बचा लिया था। वह अंगुली न उठी होती, वह निर्णय न हुआ होता, उस विपत्ति को कृष्ण ने समयपूर्व न देख लिया होता तब क्या उद्धव, गोकुल और गोकुल की समृद्ध पशु-सम्पत्ति शेष रही होती ? उन सबको उस भीषण वर्षा और तूफान ने आत्मसात कर लिया होता।

किन्तु एक अंगुली ने कितनों को बचा लिया। लगता था कि वह अंगुली समूचे गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाये हुए है और उसके नीचे घोर जलवृष्टि में डूबते गोकुलवासी धन-सम्पत्ति सहित बच गये हैं।

जब-जब स्मरण करते हैं उद्धव, सब अलौकिक ही लगता है उन्हें। पूर्णतः लौकिक होते हुए भी अभूतपूर्व अलौकिकता से भरा हुआ।

लौकिक यह कि उन सभी ने गोवर्धन की ऊंचाई, नीचाई में उस समुद्रवत बढ़ते जल से जीवनरक्षा कर ली थी। बाढ़ ने कई पहर धरती को जलमग्न रखा, पेड़ ढहा दिये, जंगलों को तबाह कर डाला।

पर अलौकिक यह कि श्रीकृष्ण ने समयपूर्व उस विपत्ति को पहचाना, देखा, उसकी विकरालता को समझा और उससे भी आगे उसके लिए सम्पूर्ण एकाग्रता और अद्भुत साहस से रक्षा-मार्ग खोज निकाला।

वह अंनत जल !

और कृष्ण की अनंत शक्ति !

लगा था कि विपत्ति और विधाता में स्पर्धा हो गयी थी और विधाता ने सदा की भांति जय प्राप्त की।

उद्धव के कानों में आज भी वे करुण पुकारें, व्यग्र सिसकियां गूंजती हैं, जो उस दिन गोपों के होंठों से बहने लगी थीं—"रक्षा !...रक्षा करो प्रभु !"

और प्रभु ने रक्षा की। रक्षक श्रीकृष्ण ! अदर्शित शब्दों के दर्शित अर्थ !

आगत को देखने-पहचाननेवाले श्रीकृष्ण ने एक गोवर्धन के माध्यम से ही मानव-रक्षा का वह अभूतपूर्व चमत्कार किया हो, ऐसा नहीं है। अनेक बार, अनेक तरह श्रीकृष्ण की हर लौकिक क्रिया में यही अलौकिकता देखी-समझी है उद्धव ने।...और एक बार पुनः अलौकिक शक्ति का अनुभव हो गया है उन्हें। रुक्मिणी के माध्यम से श्रीकृष्ण का यह सन्देश—"उद्धव आयेंगे।"

"उद्धव ही आयेंगे, यह कैसे जानते थे कृष्ण?" उद्धव बुदबुदा उठे हैं। शैया पर लेटे-लेटे दृष्टि विदर्भराज के भव्य अतिथि-निवास की छत पर दौड़ रही है। हर जगह श्रीकृष्ण की छवि उभरती लगती है। मोहक, श्याम, श्रीकृष्ण की रूप गंगा का मधुर और पवित्र स्पर्श!

आंखें छलछला आयी हैं उद्धव की। देर तक सो नहीं सकेंगे। बहुत चाहते थे कि विश्राम कर लें, किन्तु श्रीकृष्ण स्मरण ने जैसे अनंत सागर की गहराइयों में उतार दिया था। स्मरण-आनंद से शराबोर होकर नहा गये थे वह। आत्मा पर जल-बिन्दुओं की तरह पड़ता आनंदजल!

वह रात बिता ली थी उन्होंने। बहुत तरह, बहुत-बहुत बातें विचारते हुए बितायी।

प्रभासतीर्थ क्षेत्र !

एक लम्बी यात्रा की थी उद्धव और यादव-सैनिकों की उस छोटी-सी टुकड़ी ने। किन्तु प्रभासतीर्थ के विशाल क्षेत्र में कहां होंगे श्रीकृष्ण-बलराम ? यह ज्ञात करना वहां पहुंचकर भी शेष रह जानेवाला था। वही हुआ; किन्तु जिस विश्वास के आधार पर आये थे, वही काम आया। तीर्थ क्षेत्र में पहुंचकर बहुत खोजना नहीं पड़ा था उन्हें। पता लगा था कि दो युवक गिरिगह्वर जनपद में देखे गये हैं। वे पह्लव और गह्वर[1] जातिवाले विदेशियों के साथ जहां-तहां मैत्रीभाव से विचार भी रहे हैं।

"कैसे हैं वे ?" उद्धव ने उत्सुकता से प्रश्न किया था। मन कह रहा था। निश्चय ही वे दोनों कृष्ण-बलराम होंगे, किन्तु विदेशियों के साथ ? असुरों के बीच हैं या राक्षसों के ? कहीं व्यग्रता भी अनुभव हुई थी उद्धव को।

प्रभासक्षेत्र में जहां-तहां छुटपुट बस्तियां भी बसी हुई थीं। ऐसी ही एक बस्ती में जा पहुंचे थे उद्धव। पूछताछ की तो एक युवती ने सूचना दी थी। आगे बतलाया था—"उनमें से एक कृष्णवर्ण है, पर बहुत मोहक छविवाला और दूसरा गौरवर्णी विशालदेह ! दोनों ही स्वयं को भाई-भाई बतलाते हैं।"

निश्चित हो गया था—कृष्ण और बलभद्र !

"किस दिशा में है गिरिगह्वर ?"

१. पह्लव और गह्वर। 'महाभारत' के अनुसार ये दोनों ही 'विदेशी' हैं। सामान्यतः विदेशियों के लिए राक्षस शब्द का उपयोग आया है। उल्लेख्य है कि पह्लव लोगों को लेकर महाभारतकार भी उन्हें व्यापारी जाति कहता है। पुण्यजन, पुणजन, पाणि या पणि, पह्लव से मिलते-जुलते शब्द ही हैं। दोनों का फैलाव वर्तमान गुजरात को सागरतटीय क्षेत्र में ही बतलाया गया है।

युवती ने दिशा-दर्शन कराया। समुद्र-तटवर्ती क्षेत्र था वह। युवती बोली थी—"गह्वर और पह्लव—दोनों ही विधर्मी, विदेशी हैं। समुद्र तट के सम्पूर्ण क्षेत्र में उनके जलयान रुकते हैं। इन जलयानों से वे सब भरत-खंड के प्रमुख क्षेत्रों में व्यापार करने जाते हैं। दूर-सुदूर[1] करवीरपुर,[2] गोमंत द्वीप-खंडों से लेकर कुशस्थली तक उनका व्यापार बिखरा हुआ है। वे विलासी, निर्दयी और क्रूर हैं। आप लोग उनकी दिशा में जायें, तो कृपया अपनी सुरक्षा का विचार पहले कर लें।"

"और उन्हीं के बीच वे यादव युवक विचर रहे हैं?" उद्धव चिन्तित होकर बड़बड़ाये थे।

युवती ने उत्तर दिया था—"गह्वर जाति के एक पूरे परिवार की ही उन युवकों ने रक्षा की थी। इसी कारण वे उनका स्वागत-सत्कार पा रहे हैं। चपल कृष्णवर्णी युवक ने उन्हें प्रभावित कर रखा है।"

उद्धव कुछ-कुछ सहज हुए। गह्वर और पह्लवों के क्षेत्र की ओर बढ़ते हुए मन तनिक सहमा हुआ था, पर यह विचारकर आवश्वस्त थे कि वहां श्रीकृष्ण और बलराम उपस्थित होंगे। उनके रहते किसी तरह का भय नहीं हो सकता था। उनकी शक्ति, सामर्थ्य और क्षमताओं पर आस्था ही नहीं, श्रद्धा थी। चल पड़े, इस विचार से रोमांच अनुभव हो रहा था कि पहली बार भरत-खंड में बिखरी नयी विदेशी जातियों के दर्शन करेंगे। उनके आचार, विचार, व्यवहार का अनुभव होगा।

कभी-कभी एक बात मन को कुरेदती—वृष्णिवंशी यादव महात्मा अक्रूर के राज्य-क्षेत्र में पहुंचकर भी यादवसुत कृष्ण ने उनसे सम्पर्क नहीं किया? भला क्यों? सम्पूर्ण प्रभास-क्षेत्र तो अक्रूर के ही शासन में है, तब भला अक्रूर का नाम—प्रभाव क्यों नहीं सुन सके हैं उद्धव?

कहीं कोई राजनीतिक उलट-पुलट तो नहीं हो चुकी इस बीच? चिन्तित हुए थे उद्धव। पर जब तक श्रीकृष्ण से भेंट न हो—कुछ ज्ञात नहीं हो सकेगा।

१. करवीरपुर : वर्तमान कोल्हापुर : महाराष्ट्र।
२. गोमंत : वर्तमान गोआ। कहीं-कहीं इसे गिरिगोमंत भी कहा गया है।

वे सब गहन-जंगल में कितनी देर तक चलते रहे थे, पता ही न चला। बस, लगता था कि शरीर में धीमे-धीमे समाती जा रही थकान जतला रही है, बहुत दूर चले आये हैं, किन्तु समुद्र-तट का अभी तक कोई संकेत नहीं ?

एक यादव सैनिक बोला था—"नायक ! मुझे लगता है हम दिशा भ्रमित हुए हैं।"

"कैसे ?" उद्धव थमे।

सैनिक ने उत्तर दिया था—"दायीं ओर हल्की-हल्की ठंडी हवा के झोंके आ रहे हैं, नायक ! संभवतः समुद्रतटीय क्षेत्र विपरीत दिशा में है।...और, मुझे लगता है हम बहुत दूर नहीं हैं।"

उद्धव ने कुछ समय खड़े रहकर जैसे सैनिक के अनुमान का स्वयं अनुभव किया था। हां, विपरीत दिशा से ही नम हवाएं आ रही थीं। बोले—"तुमने उचित ही कहा है, सैनिक ! वास्तव में हम दिशाभ्रमित हो गये थे।" फिर वह दायीं ओर मुड़ चले। सैनिक पीछे-पीछे।

सैनिक का अनुमान एकदम सही निकला था। थोड़ी देर चलने के बाद ही वे सब ठिठक गये ! ...

छुटपुट घरों का एक जाल बिखरा हुआ था सामने। उस जाल में हलचल। सन्ध्या घिर आयी थी। अनेक स्थानों पर प्रकाश-व्यवस्था भी थी। निश्चय ही वे सब पह्लव या गिरिगह्वर के पास थे।

उन सभी ने एक-दूसरे को देखा, फिर दबे कदमों आगे बढ़े। बहुत कुछ दृष्टि के सामने स्पष्ट हो गया था। वेशभूषा, चेहरे-मोहरे और जहां-तहां लगे पहरेदारों से पल-भर में पता चल गया था, वे विदेशी ही हैं। कुछ कदम और बढ़ने पर सागर-किनारे खड़े अनेक छोटी-बड़ी नौकाओं और विशालकार जलयानों पर दृष्टि पड़ी थी उनकी। अब तनिक भी संशय नहीं।

उद्धव ने फुसफुसाकर साथियों से कहा था—"सतर्कता और सावधानी से चलो!" इस आशंका से मन रिक्त न था कि श्रीकृष्ण और बलराम किसी और बस्ती में भी हो सकते हैं। क्या मालूम उद्धव और उनके साथी सही लोगों तक पहुंच रहे हैं या नहीं?

अभी कुछ ही बढ़े थे कि चौंक गये। उन्होंने आहटें सुनीं, फिर आहटें लगातार हुईं। अगले ही क्षण उद्धव और यादव सैनिकों ने पाया कि वे कुछ विशालदेह विदेशियों से घिरे हुए हैं। सभी हथियारबन्द थे। सब चौकन्ने। एक व्यक्ति प्रकाश के लिए विचित्र-से आकार की कोई वस्तु हाथ में लिए हुए था।

उद्धव और उनके साथी सहम गये। विशेषकर इस कारण कि जिन लोगों ने उन्हें घेर लिया था, वे काले, लम्बी-चौड़ी देहोंवाले व्यक्ति थे। उनके वस्त्र बहुमूल्य थे; किन्तु चेहरे भयानक। बाल घुंघराले और होंठों की मोटाई करीब-करीब लटकती हुई। छोटी-छोटी आंखों में खून बरसता हुआ-सा। उन सभी को अपने बीच पाकर वे परस्पर अजानी भाषा में कुछ कह भी रहे थे।

एक वृद्ध उन सभी को चुप करके आगे बढ़ आया। उसने प्रश्न किया था, "कौन हो तुम लोग?" उद्धव सन्तुष्ट हुए। वह आर्य भाषा जानता था।

"आर्य!" उद्धव ने तुरंत उत्तर दे दिया था। मन के भय को समूची शक्ति से चेहरे पर अव्यक्त रखा।

"आर्य!" वह बड़बड़ाया, फिर अगला सवाल किया था उसने—"यहां किस प्रयोजन से आये हो?"

"हम अपने दो आर्य मित्रों को ढूंढ़ रहे हैं।" उद्धव ने उत्तर दिया—"संभवत: वे दोनों आप ही की बस्ती में हैं।" बात पूरी करके उद्धव ने दृष्टि उस काले बदरंग; किन्तु रोबदार स्वरवाले वृद्ध पर ठहरा दी। यदि श्रीकृष्ण बलराम इस बस्ती में होंगे, तब उस व्यक्ति की आंखें बहुत कुछ कह डालेंगी।

वह व्यक्ति एक क्षण उन सभी को घूरता रहा, फिर अपने साथियों की ओर मुड़ा। अपनी भाषा में उनसे कुछ कहा और वे सभी उद्धव और उसके

साथियों को घेरे हुए बस्ती की ओर बढ़ चले।

कुछ पल बाद वे वस्ती में थे। उन्हें देखते ही अनेक लोग घिर आये थे वहां। उनकी वेशभूषा से प्रकट हो रहा था कि वे सैनिक हैं। उद्धव और उनके साथियों से अस्त्रास्त्र रख देने को कहा था उन्होंने, फिर एक ओर बिठा दिये गये थे वे। दूर, बस्ती से अलग उद्धव ने देखा था, एक और छोटी-सी बस्ती वसी हुई लगती थी। इस वस्ती और उस बस्ती के रहन-सहन में बहुत अन्तर था। संभवत: वे मालिकों और सेवकों का अन्तर स्पष्ट करती थीं। वह बस्ती चारों ओर से सैनिकों से घिरी हुई थी।

नौकाएं और जलयानों पर बड़ी मात्रा में सामान लदा दीख रहा था। सबसे बड़े जलयान के ऊपर प्रकाश था। इस प्रकाश में उद्धव ने स्पष्ट देखा, काफी चहल-पहल थी। वृद्ध विदेशी उन सभी को बन्दी की तरह बैठाये हुए छोड़कर तीव्रगति से उसी जलयान की ओर बढ़ गया था।

कुछ समय बाद वृद्ध को उन्होंने देखा। उद्धव ने अनुभव किया कि चिन्ता से मुर्झाये मन पर अनायास ही जलवृष्टि हो गयी है। विश्वास और आनंद की वृष्टि ! वृद्ध के साथ श्रीकृष्ण चले आ रहे थे।

वे सब पास आये, तो उत्साह और आनंद से भरकर उद्धव उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने उन्हें देखा और बांहें फैलाकर आगे बढ़ आये—"अरे, मित्र तुम !"

"हां, यादवसुत ! आपको पाकर बहुत आनंद हुआ।" उद्धव आनंद से भरे, बोले, दोनों गले लग गये।

वृद्ध विदेशी ने संकेत किया। सैनिकों ने बन्दी बनाये गये यादवों को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण मुड़े, वृद्ध से कहा था—"कुश ! यह मेरे मित्र हैं। बहुत दूर मथुरा नामक नगर से आये हैं।"

"तब स्वागत है इनका।" कुश नामक उस वृद्ध सेनानायक ने उत्तर दिया—"चलो, इन्हें सामंत ओशिज से मिलायें।" वह आगे हो लिया।

यादव सैनिकों को वहीं छोड़कर उद्धव और कृष्ण जलयान की ओर बढ़ चले।

जलयान विशालाकार था। जिस व्यक्ति को ओशिज कहा गया था, वह संभवत: जलयान का प्रमुख अधिकारी था। टूटी-फूटी भारतीय भाषा भी

जानता था वह। वह अनेक आर्य, असुर, पारसीक स्त्रियों से घिरा हुआ था। मदिरा का कलात्मक चषक उसके आसन के पास ही रखा था। कुछ स्त्रियां अर्धनग्न स्थिति में नृत्य कर रही थीं। अनेक सैनिक चारों ओर से मुस्तैदी के साथ पहरेदारी कर रहे थे। इधर-से-उधर स्वागत और सेवा करने में भी विदेशी ही जुटे थे, किन्तु वे किसी अन्य जाति के लगते थे, जिनमें ओशिज या कुश का कोई सम्बन्ध न था। उन सेवकों से होनेवाले व्यवहार ने पल-भर में प्रकट कर दिया था कि वे अपरोक्ष रूप से दास बनाये गये हैं। उन पर भी कड़ी निगाह लगी हुई थी।

बलराम ने उद्धव और श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्नता प्रकट की थी। एक भव्य आसन पर वह एक ओर बैठे हुए थे। ओशिज से उद्धव का परिचय कराया गया तो उसने स्नेह पूर्वक उसे भी आसन ग्रहण करने को कहा।

श्रीकृष्ण बोले थे—"अब हम लोगों को अपने डेरे पर जाने की आज्ञा दी जाये ओशिज! मेरी इच्छा है कि मैं दूर से यात्रा करके आये अपने मित्रों के साथ कुछ समय बिताऊं।"

ओशिज ने स्वीकृति दी। वे सब उसे अभिवादन करके लौट पड़े।

उद्धव बहुत चकित हुए थे। आश्चर्य! लगता था कि दूर समुद्र के समूचे ही तट पर विदेशी व्यापारियों ने पूरी तरह अधिकार कर लिया है। यही नहीं, ओशिज और कुश की जिस शक्ति, सैनिक और सत्ता का हलका-सा दृश्य देखने को मिला था, उसने अनेक आशंकाओं से मन भर दिया था। कहीं विदेशी भरतखंड पर छोटी-मोटी सत्ता ही तो नहीं चलाने लगे हैं? उनके पास सैनिक थे, हथियार और शक्तिशाली जलयान भी थे। इस आशंका ने मन खिन्न कर दिया। आर्य राजा क्या सो रहे हैं? क्या उन्हें ज्ञात नहीं कि अनजाने ही उनकी अपनी मातृभूमि पर विदेशियों के पंजे जकड़ने लगे हैं?

कृष्ण-बलराम के लिए सुख-सुविधाओं से पूर्ण डेरा बनवाया था पणियों

ने। साथ आये यादव सैनिकों को विश्राम की आज्ञा देकर उद्धव श्रीकृष्ण से बातों में उलझ गये। बलभद्र अपने विश्राम कक्ष में समा गये।

उद्धव कुछ पूछें, इसके पूर्व श्रीकृष्ण ने कहा था—"देखा उद्धव! कुशस्थली से लेकर सम्पूर्ण गोमांतक, करवीरपुर और करहाट से भी आगे तक ये विदेशी समुद्री तटों पर अपनी सैन्य शक्ति के साथ बिखर चुके हैं, इनके पास अपार सैनिक शक्ति और ध्वंसक अस्त्रास्त्र भी हैं, जबकि इन सीमा क्षेत्रों के भरत-खंडीय राजा निश्चिन्तता पूर्वक परस्पर युद्धों में व्यस्त हैं। यही नहीं, करवीरपुर के राजा शृगाल ने तो इन पणियों से मैत्री सम्बन्ध बनाकर अपने राज्य में इन्हें व्यापार की अनुमति दे दी है।"

उद्धव ने केवल सुना। श्रीकृष्ण ने जो विषय, बात आरंभ की थी, वह वही थी, जिसे लेकर वह सोचते आये थे। क्या श्रीकृष्ण भी उन्हीं आशंकाओं से जुड़े हुए हैं, जिन्हें लेकर उद्धव चिन्तित हुए थे?

वे आसन पर बैठ गये थे। उद्धव ने देखा, श्रीकृष्ण की सेवा के लिए डेरे में दास-दासियों की व्यवस्था थी। वैभव-विलास की भी किसी तरह की कोई कमी नहीं रखी गयी थी। मन-ही-मन उद्धव ने श्रीकृष्ण को सराहा था। मन हुआ था, कह दें—"सच ही तो कृष्ण! तुम अद्भुत प्रतिभासम्पन्न हो! रिद्धि और सिद्धि तुम्हारे साथ निरंतर चलती हैं।"

श्रीकृष्ण ने पूछा—"विदर्भ पहुंचकर तुमने निश्चय ही कुंडिनपुर में विदर्भकन्या रुक्मिणी से भेंट की होगी उद्धव! कैसी हैं राजकुमारी?" एक ही पल में बदल गये थे कृष्ण। पल-भर पूर्व जिस स्वर से सूर्यकिरणों जैसा असह्य तेज झर रहा था, वही सहसा शहदीला हो गया। उद्धव ने उन चंचल पुतलियों के भीतर तक झांकने का प्रयत्न किया था। भीष्मक पुत्री की चर्चा करते हुए श्रीकृष्ण बहुत भावुक लगे थे उन्हें, अत्यधिक रसमय। कहा—"हां, यशोदासुत! महाराज भीष्मक के अतिथिगृह में गुप्त रूप से राजकुमारी रुक्मिणी मुझे मिलीं। उन्होंने सन्देश दिया था कि तुम किस दिशा में हो सकते हो और यह भी कहलवाया है कि···।" बोलते-बोलते रुके उद्धव। चपलता उनकी अपनी दृष्टि में उभर आयी। सोचा अधूरे संवाद से उत्सुक श्रीकृष्ण अवश्य पूछ बैठेंगे—"क्या कहा रुक्मिणी ने?"

पर श्रीकृष्ण कुछ न पूछकर बुदबुदाये थे—"जानता हूं, क्या कहा

होगा रुक्मिणी ने।"

"तुम जानते हो ?" उद्धव ने चौंककर प्रश्न किया था।

"हां।" श्रीकृष्ण बोले थे—"यही कहा होगा कि वह मुझे सदा ही स्मरण करती हैं।"

आश्चर्य और अविश्वास से मुंह खुला रह गया उद्धव का। अद्भुत ! बिलकुल रुक्मिणी के कहे शब्द ! कैसे ? कैसे जानते हैं कृष्ण ? कुछ खिन्न से हो गये थे। "तुम···तुम यह सब किस तरह पहचान लेते हो कृष्ण। उन्होंने यही कहा था, पर तुम्हें मालूम कैसे हुआ ?"

कृष्ण हंसे, फिर 'यूं ही' के भाव से उत्तर दे दिया था—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है उद्धव—सब बहुत सहज है। जो मुझे सदा स्मरण रहता है, वह केवल इसी कारण रहता है, क्योंकि उसके स्मरण में मैं निरंतर होता हूं। रुक्मिणी सदा ही मेरे साथ रहती हैं, तब प्रकट है कि मैं सदा उनके मन में उपस्थित हूं।"

अनेक बार की तरह इस बार भी दृष्टि में न समझा पाने का सरल बालक भाव लिए देखते रह गये थे उद्धव। मन के भीतर शब्द घुमड़ते और गुनगुनाते हुए—"तुम्हें समझा पाना बहुत कठिन है कृष्ण ! बहुत कठिन।"

सहसा उद्धव का उलझाव-सुलझा दिया था कृष्ण ने। तुरंत विषय परिवर्तन कर दिया। कहा—"वह सब छोड़ो ! तुम केवल यह बतलाओ, मथुरा नगरी, महाराज उग्रसेन आदि कैसे हैं ? कैसे हैं पितृ वसुदेव और माता देवकी ? तुम्हें यात्रा में कोई कठिनाई तो नहीं हुई न ? सब विस्तार से जानना चाहता हूं।"

उद्धव सहज हो गये। असहजता को मन में संजोये हुए सहज। सब कुछ विस्तार से कह सुनाया। श्रीकृष्ण बिना टोके सुनते रहे। न तो चिन्ता दीखती थी उनकी आंखों में, न व्यग्रता। इस तरह सहज थे जैसे प्रतिक्रिया हीन हों। अंत में बोले थे—"जानकर प्रसन्न हूं।"

उद्धव ने पुन: कहा था—"महाराज उग्रसेन और अनेक समर्थक तुम्हें बहुत स्मरण करते हैं वासुदेव ? मथुरा अब भी दुष्ट जरासंघ के भय से मुक्त नहीं हो सकी है। बीच में सुना था कि तुम न मिले तब वह मथुरा पर आक्रमण अवश्य करेगा।"

"इस बार मैं उससे मिलूंगा, उद्धव ! समूचा यादववंश उससे मिलेगा।" श्रीकृष्ण ने कहा था—"तनिक समय ठहरो ! बहुत शीघ्र जरासन्ध की असंयत शक्ति को विशाल यादव गणसंघ की शक्ति संयम से रहना सिखायेगी।"

उद्धव के मन में अनेक प्रश्नवाचक आ ठहरे थे—कैसे ?...किस तरह ?...क्यों ?...किन्तु जानते थे, श्रीकृष्ण को समझने से कहीं अधिक दुष्कर है श्रीकृष्ण के निर्णयों को समझना। चुप हो गये।

श्रीकृष्ण ने उन्हें विश्राम की सलाह दी। कहा था—"अब कल बात करेंगे।" उद्धव ने डेरे में अपने लिए नियत कक्ष के भीतर निश्चिन्त नींद ली।

अगली भोर ने बहुत कुछ समझाया था उद्धव को। यह कि यादवपति अक्रूर कुशस्थली में बढ़ चुकी पणियों की शक्ति से आक्रान्त हैं। सत्ता उनके हाथ में है; किन्तु पणिशक्ति की बाढ़ की तरह फैलती सम्पन्नता ने उन्हें ही नहीं, सामान्य जनों को भी भयभीत कर रखा है। समुद्र-तटीय क्षेत्रों के अनेक आर्य राजा पणियों से मिले हुए हैं, उन्हें अपनी निजी शत्रुता के कारण बढ़ावा दे रहे हैं। गोमंतक, करवीरपुर, करहाट आदि सभी क्षेत्रों में निरन्तर पणियों की शक्ति बढ़ती जा रही है। अनेक समुद्र-सीमाओं को पार करके वे लोग भरतखंड में अपने जलयानों से आते हैं। इन पणियों के जलयानों का मालिक पुंच्चजन नामक राक्षस है।[1] उसके पास दिव्य

१. महाभारत में ऐसा कोई संदर्भ नहीं आया है, जिसके अनुसार देवासुरों के बीच जब समुद्र-मंथन हुआ, तब से श्रीकृष्ण के काल तक 'पांच्चजन्य' कहां रहा। बहरहाल यह अवश्य सिद्ध होता है कि 'पांच्चजन्य' समुद्र से ही निकला और श्रीकृष्ण के हाथ लगा। महाभारत-आधार पर ही स्व० कन्हैयालाल-माणिकलाल मुंशी ने 'पांच्चजन्य' का सम्बन्ध 'पांचजन' या 'पुन्यजन' (पुण जन तो नहीं ?) से जोड़ता है। उनके अनुसार यह शंख इस नाम के विदेशी (पुराणों के अनुसार राक्षस) के पास था। श्रीकृष्ण ने इसे सागर-पार के देश, जिसे यमपुरी कहा गया है, जाकर प्राप्त किया। 'पांच्चजन्य' शंख की विशिष्टता थी उसकी जबरदस्त उद्घोष एवं उसका ध्वनि माधुर्य। वह बाद में कुरुक्षेत्र युद्ध के समय, धर्म के विरुद्ध अधर्म के युद्ध की घोषणा बना। इस तरह पांच्चजन्य अधर्म के विरुद्ध धर्म का शंखनाद स्वीकारा गया।

उल्लेख्य है कि महाभारत के द्रोणपर्व (अध्याय ११ में श्लोक-क्रम १७ से २०) के मध्य धृतराष्ट्र कृत श्रीकृष्ण की प्रशंसा में कहा गया है—"उन्होंने (श्रीकृष्ण) ने विकट जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र के भीतर प्रवेश किया और जल के भीतर जाकर वरुण देव को अपने वश में कर लिया। उन माधव ने पातालवासी 'पंच्चजन' दानव को युद्ध में मारकर दिव्य पांच्चजन्य शंख उससे प्राप्त किया···।"

अस्त्रास्त्र तो हैं ही, मोहक ध्वनि करनेवाला पांच्चजन्य नामक शुभशंख भी है। पंचजन राक्षसों के अनेक जलयानों का मुख्य केन्द्र कुशस्थली बनी हुई है। विभिन्न देशों और द्वीपों से जुटाये गये दास-दासियां इन जलयानों का संचालन करते हैं। वे पंच्चजन और उसके क्रूर सैनिकों से भयाक्रांत रहते हैं। उन्हें सदा ही पणि सैनिक भांति-भांति से कष्ट देते रहते हैं।

सुनकर चकित हो रहे थे उद्धव। श्रीकृष्ण से पूछ लिया था, "किन्तु तुम इनके बीच किस तरह प्रभावशाली हो गये कृष्ण!"

श्रीकृष्ण हंसे थे— "बहुत सहज संयोग कहा इसे···।"

टोक दिया था उद्धव ने—"तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है कृष्ण! विश्वास योग्य बात नहीं है। तुम तो साक्षात् आयोजन हो, केवल योग। संयोग सामान्यों के लिए होता है।"

श्रीकृष्ण ने उत्तर नहीं दिया, कतरा गये। तुरंत ही विषय आगे बढ़ा दिया था—"जिस कुश नामक व्यक्ति से तुम मिले हो, वह अपनी पत्नी वृषभा और वृतिकी के साथ प्रभास के ही एक एकांत समुद्र-तट पर कुछ वस्तुएं लेकर उतरनेवाला था। दासों ने विद्रोह करके उसे परिवार सहित जलसमाधि देने का प्रयत्न किया। भइया बलभद्र और मैंने उसकी रक्षा की। कुश प्रभावशाली व्यक्ति है। उसे पंच्चजन भी आदर देता है। कुश और उसके परिवार ने इस उपकार के बदले हमें निवास दिया, स्वागत सत्कार कर रहे हैं।"

उद्धव चुपचाप सुनते रहे।

श्रीकृष्ण ने कहा था—"इनके साथ रहने से बहुत कुछ जाना-समझा है उद्धव! देखता हूं कि इन असुरों, पारसीकों (पणियों) गह्वरों, म्लेच्छों के समुद्र तटीय क्षेत्रों पर बढ़ते प्रभाव ने आर्य व्यवस्था और धर्म को जितना संकटग्रस्त नहीं किया है, उतना संकटग्रस्त निम्न-स्वार्थों में जकड़े आर्य राजाओं ने कर दिया है। कुछ दिन पूर्व मैं और बलभद्र करवीरपुर की यात्रा पर थे। हमने पाया कि वहां का राजा श्रृगाल पूर्णतः पणियों के हाथ में है। राक्षस पंच्चजन का उसी पर प्रभाव है। एक प्रकार से करवीर-पुर की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में विधर्मियों ने व्यापार के माध्यम से पूरी तरह अधिकार कर लिया है···" बोलते-बोलते श्रीकृष्ण का स्वर

भारी ही नहीं, एक गुंजन से भर गया था, उसमें मन और बुद्धि को झकझोर देनेवाला नाद समा चुका था। लगता था कि सम्पूर्ण भरत-खंड की दूर-दरंत सीमाओं को छूती वह आवाज़ उद्धव सुन रहे हैं, प्रेरणा और शक्ति से भरी आवाज़।...

"मगधराज जरासंध, चेदि के राजकुमार शिशुपाल, विदर्भसुत रुक्मी, महा शक्तिशाली कुरुराज धृतराष्ट्र से लेकर भरत-खंड के अनेक छुटपुट क्षत्रिय राजा निरंतर अपने परस्पर स्वार्थों, झगड़ों, मान-अपमान के असत्य अनुमानों में डूबकर जूझ रहे हैं, शक्तिक्षय कर रहे हैं राज्य लोलुपता में व्यस्त हैं।" श्रीकृष्ण की दृष्टि उद्धव की ओर नहीं थी। वह कहां, किस दिशा और किसी सीमा तक देख रहे थे, ज्ञात नहीं, किन्तु उद्धव ने इतना अवश्य ही जान लिया था कि श्रीकृष्ण आकाश, जल, पृथ्वी से परे बहुत दूर— दूरंत देख रहे थे।

सहसा चुप हो रहे थे वह। विचारग्रस्त। पल भर के लिए कक्ष में सन्नाटा बिखर गया था, फिर बुदबुदाये थे श्रीकृष्ण—"यह सब शुभ में बदलने के लिए बहुत कुछ अशुभ झेलना होगा उद्धव! देखता हूं कि इस सब को सहजने के लिए बहुत-सा दर्शित सुख बिसराना होगा। वह दृष्टि जागृत करनी होगी, जो चिरंतन है। वह सत्य पहचानना होगा, जिसके पार और जिससे परे कोई सत्य नहीं है!..."

उद्धव ने प्रयत्न किया था कि समझें—पर लगा कि सहजता से समझ पाने योग्य बात नहीं है।

अभी वे यह सब चर्चा कर ही रहे थे कि एक वृद्ध दास आ पहुंचा था। श्रीकृष्ण के समक्ष श्रद्धा से झुककर उसने निवेदन किया था—"आर्य! मैं अवसर पाकर विशेष निवेदन करने उपस्थित हुआ हूं।"

श्रीकृष्ण ने सतर्कता से इधर-उधर देखा, फिर आगे बढ़ आये। धीमे शब्दों में कहा—"कहा, हेमगुह! ...कुछ विशेष?"

उद्धव चमत्कृत होकर देखते रहे। आश्चर्य! एक ओर श्रीकृष्ण ने पणियों को प्रभाव में ले रखा है, दूसरी ओर यह अन्य विदेशी...?

"कुशस्थली से करवीरपुर क्षेत्र तक के जलयानों में वे सारी व्यवस्थाएं की जा चुकी हैं, जो अपेक्षित हैं। अब केवल आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा

है ।"

"मुझे प्रसन्नता हुई, गुह !" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"आज रात्रि ही याननायक ओशिज के साथ मैं उनके जलयान पर यात्रा कर रहा हूं। तुम सभी को वह निश्चित समय सूचना दे दो, जब उन्हें कार्यरत होना है।"

"जैसी आपकी आज्ञा, आर्य !" हेमगुह ने प्रसन्नतापूर्वक कहा था। जाने को हुआ, श्रीकृष्ण ने टोका था उसे—"और सुनो गुह !"

वह थमा।

श्रीकृष्ण ने धीमे स्वर में पुनः प्रश्न कर दिया—"सभी गह्वर स्त्रियों को तैयार रहने को कह दिया है न ?"

"हां, आर्य ! वें समय पर तत्परतापूर्वक स्थल योजनाएं सम्हाल लेंगी !"

"उचित है।"

गुह चला गया।

उद्धव की समझ में कुछ भी नहीं आया था। वह जानना चाहते थे कि दासों को किस तरह विश्वास में लिया वासुदेव ने, पर श्रीकृष्ण बोले थे—"उद्धव ! तुम्हें इसी समय कुशस्थली की ओर जाना होगा। मैं बतलाता हूं कि मार्ग में किस स्थान पर अक्रूर से भेंट कर सकोगे !" उन्होंने अपने पीताम्बर का एक छोर, जो कमर से लिपटा हुआ था, निकाला और उद्धव को समझाने लगे थे। "यह है कुशस्थलो और यह रहा इस डेरे से कुशस्थली का मार्ग। यह जो काला संकेत बिन्दु देखते हो न, यहीं अक्रूर और सात्यकि अपनी विशाल यादव सेना के साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

उद्धव कुछ चकित, किन्तु तत्पर दृष्टि से पीताम्बर पर अंकित हर संकेत को देखते रहते थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें सन्देश दे दिया था, जिसे रात्रि के अन्तिम प्रहर से पूर्व उद्धव को अक्रूर तक पहुंचाना था। तुरंत लौटकर सूचना भी देनी थी।

अक्रूर से निश्चित स्थान पर भेंट करके लौटे तब तक अगले दिन की भोर हो चुकी थी। श्रीकृष्ण को सूचना दी थी—"सन्देश पहुंच चुका है।"

श्रीकृष्ण ने कुछ कहा नहीं। उन्हें कक्ष में विश्राम करने भेज दिया और स्वयं बलभद्र से बातें करने लगे।

सांझ के साथ ही उद्धव और यादव सैनिकों के साथ श्रीकृष्ण और बलभद्र जलयान नायक पणि ओशिज के जलयान पर सवार हुए। विशालाकार जलयान ने समुद्र-यात्रा प्रारंभ की। उद्धव समझ चुके थे कि श्रीकृष्ण कुशस्थली की मुक्ति योजना बना चुके हैं। यादव सैनिकों की संख्या अधिक नहीं थी। कुल बीस थे वे। उद्धव ने उन्हें प्रतिपल किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहने का निर्देश दे दिया था।

ओशिज अपने कक्ष में पहुंचकर सदा की तरह नृत्य, मदिरा के विलासी आयोजन में व्यस्त हो गया था। श्रीकृष्ण और बलभद्र, उद्धव को साथ लिए उस छोटे-से समारोह में उस समय तक उसका साथ देते रहे, जब तक कि ओशिज मदिरा के वश में नहीं हो गया, फिर अपने कक्ष की ओर चले आये।

पणि सैनिक जलयान के हर महत्वपूर्ण स्थान पर चौड़े फलवाले और घातक अस्त्र लिये हुए पहरा दे रहे थे। श्रीकृष्ण उनके लिए सम्माननीय थे। कुश अपने परिवार सहित पणि-बस्ती में रह गया था। हेमगुह नामक वृद्ध दास जलयान के यांत्रिक विभाग में कार्यरत दासों को नियंत्रित करता था। उसे यान में यहां-वहां आने-जाने की छूट थी। इसके बावजूद उद्धव ने देखा कि हेमगुह पर हर पणि सैनिक चौकन्नी दृष्टि अवश्य गड़ाये रहता था।

प्रकाश से नहाया हुआ विशाल जलयान अनंत समुद्र की शान्त जलधाराओं पर तीव्रगति से बढ़ता जा रहा था। श्रीकृष्ण कक्ष के बाहर निकले और समुद्र के अनंत विस्तार को देखने लगे। वे शान्त थे पर लगता था कि यह शान्ति गहरी उथल-पुथल से भरी हुई है। उद्धव ने उनके पीछे आकर पूछा था, "क्या देख रहे हो वासुदेव!"

"देख रहा हूं उद्धव कि वरुण देवता ध्वंस से पहले कितने शान्त लगते हैं।" श्रीकृष्ण बुदबुदाये। उद्धव ने चकित होकर प्रश्न किया था—"तुम···

तुम क्या यह कहना चाहते हो कि शीघ्र ही वरुण कोप करनेवाले हैं ?"

"निःसन्देह !" श्रीकृष्ण ने इस तरह कहा था, जैसे किसी शक्तिशाली लहर ने यान के ऊपर आकर उद्धव को नहला दिया हो। बदन सिहर उठा था। याद हो आयी थी बालपन की वह घटना। श्रीकृष्ण ने गोकुल पर वरुण के कोप से पहले ही समझ लिया था कि क्या घटनेवाला है ? तब भी इसी तरह दूर, यमुना के पार देखने लगे थे श्याम—"हे, ईश्वर !" उद्धव के भीतर चिन्ता उभर आयी थी।

सहसा श्रीकृष्ण मुड़े। संकेत से एक ओर खड़े पणि सैनिक को बुलाया। उसी की भाषा में बोले—"ओशिज को जगाओ सैनिक ! समुद्र में तूफान आने को है। तेज वर्षा भी होगी।"

"पर···आर्य···!" सैनिक भौंचक्का होकर देखने लगा था समुद्र और आकाश की ओर। दूर-दूर तक कहीं वर्षा या तूफान का कोई संकेत न था। केवल तेज हवाएं चल रही थीं, किन्तु उससे क्या ?

"शीघ्रता करो, सैनिक !" श्रीकृष्ण के स्वर में आदेश था। घबराया, सहमा हुआ सैनिक ओशिज के कक्ष की ओर दौड़ गया। श्रीकृष्ण मुड़े और तीव्रगति से यान की तलहटी में उतरने लगे। हेमगुह जैसे पहले ही प्रतीक्षा कर रहा था उनकी। तुरंत पास आ खड़ा हुआ। श्रीकृष्ण ने क्या कहा, सुन नहीं सके थे उद्धव। बात करके श्रीकृष्ण पुनः अपनी जगह आ पहुंचे।

पणि सैनिक लपका हुआ आया। बतलाया कि ओशिज गहरे नशे में होने के कारण जाग नहीं रहे हैं।

श्रीकृष्ण ने जैसे ओशिज की ओर से ही आदेश प्रसारित करने प्रारंभ कर दिये थे—"सभी सैनिक, पहरेदार नीचे के कक्ष में चले जायें ! तेज वर्षा आरंभ होने को है और समुद्र भी तूफान से जकड़ जानेवाला है। रक्षा की दृष्टि से यह आवश्यक है।"

पल-भर में सम्पूर्ण जलयान उथल-पुथल से भर उठा। श्रीकृष्ण स्वयं दौड़-दौड़कर पणि सैनिकों को आदेश देते रहे। छोटे-छोटे जत्थों के रूप में घबराये सैनिक नीचे के कक्षों में समाते जा रहे थे। उद्धव चकित खड़े देख रहे थे। बलभद्र हलचल से चौंककर ऊपर आ पहुंचे—"क्या हो रहा है कृष्ण !"

"कुछ नहीं भइया!" श्रीकृष्ण ने सरलता से उत्तर दिया था—"तूफान आनेवाला है!"

थोड़ी ही देर में विशाल जलयान का ऊपरी हिस्सा पणि सैनिकों से रिक्त हो चुका था और उसी के साथ आरंभ हो गयी थी वारिश! आश्चर्य! उद्धव ने सोचा था, थोड़ी देर पहले जो आकाश स्वच्छ था, वह मेघों से किस तरह भर गया? तभी दूसरे अचरज से सामना हुआ था उद्धव का। उन्होंने देखा, नीचे के कक्षों से वे दास सैनिक, जिन्हें यान संचालन के लिए बन्दी बना रखा गया था, अब मुक्त भाव से ऊपर आ रहे हैं। वे अनेक थे। सभी के हाथों में पणि सैनिकों के वे अस्त्रास्त्र थे, जिन्हें लेकर वे विभिन्न कक्षों में जा समाये थे!

और श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए अपने स्थान पर! ···रहस्य से पूर्ण! ··· चपल दृष्टि से कभी उद्धव और बलराम को देखते हुए।

बलभद्र ने अचकचाकर प्रश्न किया—"यह क्या हुआ कृष्ण! पणि सैनिकों का क्या हुआ?"

"वे सब अब इस यान का संचालन नहीं करेंगे भइया!" श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया था—"ओशिज का स्थान दास हेमगुह लेगा और उसके बन्दी साथी इस जलयान के नाविक रहेंगे।"

बलभद्र चकित होकर देखने लगे थे कृष्ण को। उद्धव के चेहरे पर उतना विस्मय और आतंक नहीं था। श्रीकृष्ण ने कहा था—"यह तूफान भी अधिक देर नहीं चल सकेगा, भाई! शीघ्र ही सब कुछ सयंत हो जायेगा।"

बलभद्र ने सहजता से प्रश्न कर दिया था—"इस सबसे लाभ क्या होगा कृष्ण!"

"यह कुशस्थली की मुक्ति का पूर्वाभियान है, बलभद्र!" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"इस शक्तिशाली जलयान और इसके संहारक अस्त्रों से उन पणियों को पर्याप्त शक्ति के साथ कुशस्थली के बाहर धकेला जा सकेगा, जिन्होंने भरतखंड में अपना सैन्य-शक्ति से पूर्ण केन्द्र वना लिया है। बन्धु अक्रूर और सात्यकि इस क्षेत्र को सम्हाल सकेंगे। यही नहीं, जरासंध से युद्ध के समय पर भी यह क्षेत्र और इसकी शक्ति हमारे लिए

उपयोगी सिद्ध होगी।"

"जरासंध से युद्ध अवश्यम्भावी है कृष्ण! मुझे ज्ञात है।" बलभद्र आश्वस्त हुए—"निश्चय ही तुमने उचित किया है; पर अभी पणि शक्ति से जूझ पाना सहज नहीं है।"

"हमारे पास जूझने के लिए न तो साधन हैं और न ही अस्त्र-शस्त्र।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"इसके लिए साधन बनेंगे हमारे दासमित्र कुश, जिन्होंने सबसे पहले कुशस्थली का विकास किया था और धीमे-धीमे उन्हें पणियों ने अधिकृत कर लिया। कुशस्थली में वे बहुत हैं और पणि उनकी शक्ति से ही अपनी समस्त-जलयात्राएं करते रहे हैं।"

"किन्तु इस तरह तुम कुशों को स्वतंत्रता दे दोगे, कृष्ण!" बलभद्र ने चिन्तित होकर पूछा था—"कुशस्थली तो फिर भी विधर्मी राक्षसों के हाथ ही रहेगी?"[1]

"ऐसा नहीं होगा बलभद्र!" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"हेमगुह से मेरी स्पष्ट वार्ता हो चुकी है। वह केवल व्यापार की स्वीकृति चाहेगा। भरतखंड में उन्होंने स्थान, सत्ता और शक्ति के एकत्रीकरण का कोई केन्द्र नहीं दिया जायेगा।"

उद्धव चुपचाप सुन रहे थे। लगता था कि श्रीकृष्ण नहीं बोल रहे हैं, एक लम्बा कालखंड अपने भविष्य का निर्धारण कर रहा है। विश्वास नहीं होता था कि युवक श्रीकृष्ण उन असीम राजनीतिक स्थितियों पर इस दूर-दृष्टि से सोच सकते हैं। आश्चर्य! जिन कृष्ण को सदा चंचल, चेष्टाएं

१. कुश जाति की सभ्यता का इतिहास नील नदी और सूडान के इर्द-गिर्द का है। कुश सभ्यता के विकास का प्रमाण ईसा से ३०० वर्ष बाद तक मिलता रहा है। कुशों को लेकर सबसे रोचक तथ्य यह है कि व्यापार में ये लोग वर्तमान ईरान, इराक, अफगानिस्तान और भारत तक सम्बन्ध रखे हुए थे। कुछ इतिहासकारों ने कुशों का उद्भवकाल ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व बतलाया है, जबकि कुछ के अनुसार वह २ से ३ हजार वर्ष प्राचीन भी हो सकता है। सौराष्ट्र में जिस कुशस्थली के बसने की बात महाभारत में वर्णित है, वह विदेशी 'राक्षसों' ने ही बना रखी थी, जिस पर कृष्ण ने अधिकार करके उसे सत्ता फैलानेवाले व्यापारियों से मुक्त कराकर द्वारका नाम दिया।

करते देखा था, जिनकी बातें कभी-कभी छोटे बालकों जैसी होती थीं, वही इतने गहरे रहस्यों से भरे हुए थे।

तूफान थमने लगा था और उसके साथ-साथ जलयान की पहरेदारी, व्यवस्था, अधिकार सभी कुछ बदल गये थे। थोड़ी देर बाद हेमगुह उनके सामने आ खड़ा हुआ था, "आप अद्भुत हैं आर्य ! आज आपके कारण हम सब मुक्त हुए।"

श्रीकृष्ण ने उत्तर न देकर पीठ थपथपायी हेमगुह की। बोले—"अभी नहीं गुह ! जब तक कुशस्थली में दास बने हुए अपने सभी साथियों और स्त्रियों को तुम मुक्त नहीं करवा लेते, यह प्रसन्नता अधूरी है।"

तूफान पूरी तरह थम चुका था और उसके साथ-साथ यान की गति भी सहज हो गयी थी। रात्रि का अन्तिम प्रहर आरंभ हो चुका था।

कुशस्थली !

वे सब जलयान के ऊपरी हिस्से में खड़े थे। उद्धव की आंखें विस्मय से भरी हुईं। सच ही तो। भरतखंड का यह समुद्र-तट तो पहचान ही नहीं आता कि यहां कहीं आर्य शेष हैं ?

पूरा तट छोटी-बड़ी अनेक नौकाओं और जलयानों से भरा हुआ था। हर यान और तट-क्षेत्र पर पणियों, नारी-पुरुषों की भारी भीड़ दिख रही थी। यहां-वहां सामान ढोते हुए पचासों कुश दास-दासियां।

उद्धव को स्मरण हो आया था। कुछ दूरी पर अक्रूर और सात्यकि यादव सैनिकों के साथ उस समय की प्रतीक्षा में होंगे, जबकि ओशिज के इस जलयान से पणि वेशभूषा में उतरनेवाले हेमगुह और उसके कुश साथी आंधी की तरह पणियों पर टूट पड़ेंगे।[1] जलयान जैसे-जैसे तटक्षेत्र में प्रवेश कर रहा था, वैसे-वैसे सामान ढोते हुए दास-दासियां तीखी, नुकीली निगाहों से उस यान की ओर ही देख रहे थे। श्रीकृष्ण के पास खड़े हेमगुह से सहसा प्रश्न कर दिया था—"तुम अग्रिम सूचनाएं तो दे चुके हो गुह !"

"आप चिन्ति न नहीं, आर्य !" हेमगुह ने उत्तर दिया था—"वे सब प्रतीक्षा ही कर रहे होंगे !"

सब कुछ योजनाबद्ध ! उद्धव ने मन-ही-मन स्तुति की थी कृष्ण की। भला अकेले रहकर वह विलक्षण चातुर्य और योजना स्तुति योग्य नहीं तो क्या थी ? श्रीकृष्ण के पास न साधन थे, न व्यक्ति; किन्तु मात्र बुद्धि और आश्चर्य-जनक आत्मशक्ति से उन्होंने उस विशाल अभियान का सफलतापूर्वक आयोजन कर लिया था !

बेहद सफल थी सारी योजना अगले कुछ घण्टों ने ही सिद्ध कर दिखाया

१. इसी काल में पाणि या पुनजनों के भारत में व्यापार फैलाने की चर्चा भी आयी है।

था। यान समुद्र तट पर पहुंचा ही था कि अनायास टूट पड़ी अनंत उल्कायें जैसे कुश लोग अस्त्रास्त्र लिये हुए आस-पास के जलयानों में समा गये थे। वे चीख रहे थे, हुंकारें भर रहे थे। सामने आने वाले हर पणि सैनिक या व्यापारी को हत करते जा रहे थे। उन्हें बाहरी मदद भी मिलना संभव नहीं रही थी, क्योंकि जिस गति से ओशिज के जलयान पर उपस्थित कुशों ने हमले किये थे, उतनी ही गति से तट-क्षेत्र में सामान ढो रहे कुश दास-दासियों ने निहत्थे ही तट-क्षेत्र के पणि सैनिकों, अधिकारियों पर आक्रमण कर दिया था।

श्रीकृष्ण, बलभद्र और उद्धव चुपचाप जलयान पर खड़े देखते रहे। दासों और स्वामियों का वह भयंकर संग्राम उस सारे दिन बस्ती में होता रहा अधिकतर जलयानों पर दासों का अधिकार हो गया था। अनेक नौकाएं और जलयान अग्नि समर्पित भी हुए। उद्धव सिहर उठे थे मृत्यु तांडव का वह दृश्य देखकर और उसी बीच यादव सेना को साथ लिये हुए सात्यकि और अक्रूर ने तीव्रगति से तट-प्रवेश किया था। दास जैसे उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अधिकतर पणि व्यापारी और उनके सैनिक या तो मारे गये या फिर बन्दी बना लिये गये।

देर रात्रि तक कुशस्थली चीत्कारों और कोलाहल से भरी रही। पणि जनों का उच्चतम अधिकारी शर्मक पकड़ा जा चुका था। श्रीकृष्ण, बलभद्र और उद्धव यादव सैनिकों के आते ही स्वयं भी उस युद्ध में जुट गये थे। रात्रि होते-होते कुशस्थली पूरी तरह से दासों के अधिकार में आ गयी। हेमगुह ने आहत शरीर के साथ उस क्षेत्र में प्रवेश किया, जहां यादव सैनिकों ने अधिकार कर रखा था। कृष्ण को अभिवादन करते हुए उसने कहा था—"आर्य! कुशस्थली स्वतंत्र हुई। उसके साथ-साथ हमारे सैकड़ों लोग भी स्वतंत्र हुए। अब हमें क्या करना है, वह बतलायें?"

उस समय श्रीकृष्ण ने थके, हारे और घायल हो चुके कुशों के उपचार तथा विश्राम की सलाह दी थी। बोले थे—"कल नगर-जीवन को सहज करने के पश्चात् विचार करेंगे कि अब क्या करना चाहिए।"

विचार होना था, इस कारण समूची रात्रि वे सब सो नहीं सके।

श्रीकृष्ण, अक्रूर, सात्यकि, बलभद्र और उद्धव ने अगली प्रातः के साथ ही कुछ महत्वपूर्ण निर्णय ले लिये थे। सुबह वे सारे निर्णय हेमगुह के सामने रखे गये। पणियों से अब भी कुशस्थली और कुशों का व्यापार निश्चिन्त नहीं हो सकता था। वे दूर-दूरंत सीमाओं तक बिखरे थे। अनेक बस्तियां थीं। उनका सर्वोच्च शासक यम, यमपुरी में रहता था, अपूर्व शक्तिशाली था।* निश्चित हुआ कि श्रीकृष्ण, हेमगुह और उसके अनेक साथी यम और वहां के शक्तिसम्पन्न सेनानायक पुन्यजन से बाद में निबटेंगे। तुरंत उन्हें करवीरपुर क्षेत्र पर अधिकार करना था। यह क्षेत्र पणियों की शक्ति और सैनिक सहायता का माध्यम बन सकता था।

करवीरपुर!

उद्धव ने विचार किया था। याद आया था कि करवीरपुर का राजा शृगाल भरतखंड के उन शक्ति सम्पन्न राजाओं में से है, जो जरासंध के आधीन ही नहीं हैं, उसकी बड़ी सहायक शक्ति भी हैं?

कृष्ण बोले थे—"करवीरपुर क्षेत्र की ओर केवल हेमगुह और उनके साथी बढ़ेंगे। इस बीच मैं मथुरा पहुंचकर जरासंध की राजनीतिक, सैनिक हलचलों को भी देख आऊंगा···हेमगुह!" सहसा वह हेमगुह की ओर मुड़े, कहा था—"करवीरपुर और करहाटक क्षेत्रों तक पहुंचने से पूर्व समुद्र-तटों

* यमपुरी और यम : महाभारत के अनुसार यमपुरी दक्षिण दिशा में थी और वहां का राजा यम सूर्य का पुत्र है तथा भारतीय संस्कृति में उसे 'मृत्युदेवता' के रूप में भी स्वीकारा गया है। अनेक देशी-विदेशी ग्रंथों में यमपुरी का अस्तित्व समुद्र-पार बतलाया गया है। यहां यह महत्वपूर्ण बात है कि इस समुद्र-पार यमपुरी के राजा यम को भी सूर्यपुत्र माना गया है। उल्लेखनीय है कि बेबिलोनियन सभ्यता में लरसा नामक नगर इस यमपुरी के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यही नहीं बेबिलोनियन भाषा में इसका अर्थ सूर्यनगर है। संभवतः श्रीकृष्ण की समुद्र-यात्राओं और विभिन्न देशों में जय के अन्तर्गत यमपुरी भी आती है। इस यमपुरी का अस्तित्व अरब सागर के पास कहीं था या कि वह लरसा ही था—अनिश्चित है, किन्तु 'पांचजन्य' की प्राप्ति तथा कुशस्थली में बसे पणियों से जहाजी लड़ाई करके समुद्र-सीमाओं को मुक्त कराने के लिए श्रीकृष्ण ने लम्बी समुद्र-यात्राएं भी कीं।

पर पणियों के जितने भी क्षेत्र और बस्तियां हैं, उन सभी को अधिकृत कर लो। यह स्मरण रहे कि किसी क्षेत्र या जलमार्ग से कोई पणि अथवा ऐसा सन्देशवाहक न निकल जाये जो यमपुरी पहुंचकर पुणजन को अथवा करवीरपुर पहुंचकर शृगाल को पणियों की पराजय सूचनाएं दे दे ?"

"आप निश्चिन्त हों, आर्य !" हेमगुह बोला था—"हम इस सबकी व्यवस्था सावधानी और सतर्कता से करेंगे।"

श्रीकृष्ण और वलराम उठ खड़े हुए। रात्रि को ही सारा कार्यक्रम बन चुका था। अक्रूर और सात्यकि को कुशस्थली व समूचे प्रभासतीर्थ क्षेत्र में राज्य-व्यवस्था ठीक तरह संभालने-सहेजने की सलाह देकर वे सब मथुरा की ओर चल पड़े थे।

उद्धव को आज भी स्मरण है।···श्रीकृष्ण की वह तुरंत निर्णय क्षमता और आश्चर्यजनक यात्रा-शक्ति ! मथुरा नगर-क्षेत्र पहुंचते हुए उन्होंने अधिक समय नहीं लगाया था। उनमें अधिक वार्ता भी नहीं हो सकी थी। अनेक बार उद्धव ने जानना भी चाहा था कि मार्ग की सघन बस्तियों से निकलते हुए श्रीकृष्ण बार-बार अपना परिचय क्यों देते जा रहे हैं ? जरासंध निरंतर उनकी खोज में था। यह जानते हुए भी कि विपत्ति किसी भी क्षण आ सकती है, श्रीकृष्ण वैसा क्यों कर रहे थे ?

वह शान्त रहते थे। लगता था कि इस शान्ति में निरंतर विचारमग्न रहते हैं वह। उससे भी अधिक संभवतः योजनाएं बनाते-मिटाते हुए। उद्धव का मन नहीं माना तो पूछ लिया था—"कृष्ण ! जानते हो न कि जरासंध को तुम्हारी सूचना अब तक पहुंच चुकी होगी ? उसके गुप्तचर, सखा और मित्रों की कमी नहीं है। वे भरतखंड के हर राज्य और क्षेत्र में बिखरे हुए हैं !"

सदा की तरह स्वाभाविक रहस्यमुद्रा में श्रीकृष्ण ने उत्तर दे दिया था—"जरासंध शक्तिमद से चूर है, उद्धव। उससे भी कहीं अधिक वह

क्रोधी स्वभाव वाला भी है। मेरे आगमन का समाचार निस्सन्देह उसे उत्तजित करेगा और मैं यही चाहता हूं कि वह उत्तेजित हो !"

चकित भाव से उद्धव ने उन्हें देखा, दृष्टि में प्रश्न भर लिया था—"क्यों ?"

उस क्यों को पढ़कर भी उत्तर नहीं दिया था कृष्ण ने। उद्धव चुप हो रहे। यात्रा चलती रही थी और फिर गर्मी से सुलगती देह-मनों पर अनायास ही आ पड़े शीतल जलविन्दुओं की तरह श्रीकृष्ण ने वलराम और उद्धव को साथ लिये हुए मथुरा नगरी में प्रवेश किया था।

मथुरावासी जितने चमत्कृत हुए, उससे कहीं अधिक विस्मित ! इस बीच वे सब जैसे श्रीकृष्ण और वलराम का अन्त हुआ, यही विचार बैठे थे। श्रीकृष्ण मित्रों से गले मिले, स्नेहियों के स्नेह के उत्तर में मुस्कानें छिड़कीं और वायुगति से महाराज उग्रसेन के समक्ष उपस्थित हुए। वृद्ध यादवराज, वसुदेव के साथ बैठे चर्चामग्न थे। श्रीकृष्ण के आगमन समाचार ने उन्हें हर्षोन्मत्त कर दिया था। शब्दहीन होकर दोनों ने ही नेह से वलभद्र और श्रीकृष्ण को गले लगा लिया। बड़बड़ा उठे थे—"बहुत आनंद हुआ, वसुदेव ! तुम्हें सकुशल पाकर जैसे मुझे नया जीवन मिला।

उद्धव विश्राम करने चले गये। श्रीकृष्ण, वलराम, उग्रसेन और वसुदेव में क्या-क्या बातें हुईं, ज्ञात नहीं हुआ था। बस, इतना याद है उन्हें कि मथुरा पर उग्रसेन ने जरासंध के संभावित आक्रमण और निरंतर धमकियों का सम्पूर्ण विवरण दे दिया था, फिर श्रीकृष्ण से अक्रूर, सात्यकि आदि के समाचार लिये थे।

श्रीकृष्ण अगले ही दिन से पुनः सक्रिय हो गये। उद्धव निरंतर यात्राओं के कारण बहुत थक चुके थे; पर श्रीकृष्ण को देखते ही हतप्रभ रह जाते। लगता ही नहीं था कि उन्होंने वर्षों से कोई दिन या यात्रा अशान्ति के साथ बितायी है ? व्यक्ति से अधिक गति दीखते थे वह।

निःसन्देह गति !

उद्धव ने कहा था—"धनंजय श्रीकृष्ण की गति है, वायु हैं, दृष्टि हैं और सीमाहीन हैं।"

अर्जुन उसी तरह विस्मय से सब कुछ सुन-जान रहे थे। क्या यह संभव है कि मनुष्य तनिक भी विश्राम न करे ? निद्रा, आलस्य, थकान यह सब शरीर को जरा भी प्रभावित न करें ?

किन्तु उद्धव ने यही कहा था—"हां, कुन्तीपुत्र ! मैंने श्रीकृष्ण को ऐसे ही देखा है। बाल्यावस्था से लेकर अब तक इसी प्रकार देखता आया हूं। वे सदा जागृत हैं। सदा गतिमान हैं। क्षण के सहस्रों हिस्सों में चैतन्य हैं, कर्मरत हैं। वह मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् ईश्वर हैं, सनातन !" आवाज़ भरी हुई थी उद्धव की। उससे कहीं अधिक नेत्र श्रद्धापूर्ण। लगता था कि वह बालसखा का वर्णन नहीं कर रहे हैं, वह प्रार्थना के किसी श्लोक का मधुर उच्चारण कर रहे हैं, आत्मलीन !

अर्जुन इस दृष्टि और स्वर में अपने आपको विलीन अनुभव करने लगे हैं। निःसन्देह जिस तरह और जिस अद्‌भुत संयोजन-बुद्धि का परिचय त्वरितता के साथ उद्धव की सुनायी घटनाओं में मिला है, वह विस्मयकारी नहीं, अद्‌भुत है।

"कुशस्थली से वापिस लौटकर श्रीकृष्ण ने वायुगति से यादव गणसंघ के अनेक वृद्धों, बिखरे हुए सामन्तों और शक्तिसम्पन्न योद्धाओं को आयोजित किया था, धनंजय ! हम मथुरावासियों ने दुःसह जरासंध के सत्रह आक्रमण सहे। श्रीकृष्ण और बलराम के अद्‌भुत रण-कौशल ने उसे निरंतर लौटने के लिए बाध्य किया; किन्तु अर्जुन।···महाबली और अनेक राजाओं की सहायता से सम्पन्न जरासध उन आक्रमणों से थका नहीं। मथुरावासी अवश्य थकने लगे। राज्य, व्यवस्था, कृषि, सम्पन्नता सब बिखरने लगी। इस स्थिति ने श्रीकृष्ण और बलराम को एक बार पुनः बाध्य किया था कि वह बिखरे शक्ति संयोजन को दोबारा जुटाएं।" उद्धव कहे जा रहे थे—जरासंध को लेकर उन्होंने राजा उग्रसेन से कहा था—"अब हमारे पुनः पलायन के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं रहा है राजन् ! हमें फिर से मथुरा, छोड़नी होगी !"

"किन्तु जरासंध मथुरा पर पुनः आक्रमण अवश्य करेगा जनार्दन ।" वृद्ध उग्रसेन व्यग्र थे।

"आप चिन्तित न हों, मथुराधिपति ।" श्रीकृष्ण ने कहा था—"इस आपत्ति से छुटकारे का उपाय भी है। मैंने एक ऐसा स्थान मथुरावासियों के सुरक्षित गढ़ के रूप में पहले से ही ढूंढ रखा है, जहां शरण ली जा सकती है। एक बार पुनः शक्ति संयोजन किया जा सकता है और उपयुक्त समय आने पर दुष्ट जरासंध से मगध ही नहीं, उन तमाम दास राजाओं को भी वन्धनमुक्त किया जा सकता है, जो उसके परतंत्र हैं !"

और इस तरह एक दिन सम्पूर्ण मथुरा तथा शूरसेन जनपद में घोषणा की गयी थी—"सब लोग तैयार हो जायें। भोर के साथ ही मथुरा क्षेत्र छोड़ना होगा।"

"और श्रीकृष्ण ···?" अर्जुन ने उत्सुक होकर पूछा।

हंसे थे उद्धव—"बहुत दूरदर्शी हैं नंदलाल ! यह मथुरावासियों के प्रस्थान से पूर्व ही पुनः दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े थे। इस बात का प्रचार भी बहुत तीव्र हुआ था कि श्रीकृष्ण-बलराम दक्षिण की ओर जा रहे हैं। श्रीकृष्ण का अनुमान था कि निश्चय ही जरासंध उनके पीछे आयेगा और जैसी कि संभावना थी कुन्तीसुत ! जरासंध, मथुरावासियों को छोड़कर हम तीनों के पीछे ही चल पड़ा था।"

एक बार पुनः दौड़ प्रारंभ हो गयी थी। इस बार नयी बात केवल यह थी कि कुशस्थली को द्वारका का नया नाम देकर भव्य गढ़-दुर्ग आदि की व्यवस्था की जा चुकी थी। दूर प्रभास क्षेत्र ही नहीं भरत खंड का बहुत बड़ा तटवर्ती क्षेत्र भी यादवों के हाथ था। अक्रूर और सात्यकि पुनर्स्थापित हो चुके थे। सत्ता ने शक्ति भी सहेज ली थी। मथुरावासियों को साथ लिये हुए तीव्रगति से राजा उग्रसेन उसी ओर बढ़ रहे थे। मथुरा क्षेत्र के निवासियों और यादव सैनिकों के साथ अक्रूर-सात्यकि की यादवशक्ति मिलते ही उसे आसानी से जय कर पाना संभव नहीं था।

श्रीकृष्ण और बलराम उद्धव को साथ लिये हुए सह्याद्रि पर्वतमालाओं की ओर बढ़े थे। इस बीच श्रीकृष्ण निरंतर कुश हेमगुह और उसके साथियों से सम्पर्क बनाये रहे।

मार्ग में श्रीकृष्ण ने अनेक ऋषि-मुनियों से भेंट की। बहुविध वाद-विवाद करके और उन्हें सम्मान पूजा देकर अपने समर्थन में लिया। वेणा नदी के तट पर तपस्वी परशुराम ने कुछ समय के लिए अपना आश्रम बना लिया था। श्रीकृष्ण उसी क्षेत्र में पहुंच कर बलभद्र और उद्धव को साथ लिये उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

महाव्रती भीष्म के शस्त्रगुरु और महातपस्वी परशुराम ने उन सभी का स्नेहादर सहित स्वागत किया। जरासंध की राजनीति, विचारों और विधर्मियों के प्रति विशेष आसक्ति से परशुराम ही नहीं, अनेक ऋषि-महर्षि अप्रसन्न थे। श्रीकृष्ण के जरासंध से अथकित संघर्ष ने उन्हें श्रद्धाभिभूत किया था। परशुराम से भेंट हुई तो स्वागत-स्नेह वार्ता में ही तेजस्वी ब्राह्मण ने यह प्रकट कर दिया। वह बोले थे—"मुझे तुमसे भेंट करके प्रसन्नता हुई है देवकीनन्दन! और प्रसन्नता होगी, जब जरासंध की मदान्ध शक्ति और राक्षसी प्रवृत्तियों को तुम संयमित कर सकोगे या समाप्त कर दोगे।"

श्रीकृष्ण विनम्र हुए थे। कहा—"इसी कारण उपस्थित हुआ हूं, भगवन् ! मुझे सद्परामर्श दें। इस समय किस मार्ग का अवलम्बन करूं ?"

परशुराम ने एक पल शान्त रहकर विचार किया। उनकी मुद्रा, स्वर और दृष्टि उनकी अपार क्षमताओं का संकेत दे रही थीं। बोले थे—"वासुदेव ! उचित यही होगा कि इस समय तुम किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचो। करवीरपुर का राजा शृंगाल जरासंध का अनुयायी और मित्र है। निश्चय ही जरासंध इस क्षेत्र में स्वयं आकर उसकी सहायता भी ले लेगा और तब तुम उनकी विशाल शक्ति में फंस जाओगे।"

"तब ऋषिश्रेष्ठ ?" बलभद्र चिन्तित हुए।

परशुराम बोले थे—"तुम स्वयं बड़े नीतिज्ञ हो वसुदेव ! कर संकर्षण जैसे अद्भुत शक्तिसम्पन्न तुम्हारे भाई हैं। समय पर जीवनरक्षा भी श्रेष्ठ धर्म होता है। अतः तुम्हें मैं महाक्रौंच्च[1] लिये चलता हूं। वहां का राजा महाखग मेरा अनुयायी तो है ही, धर्मशील भी है। वह अवश्य ही हमारी सहायता करेगा। कुछ समय सुरक्षित रूप से महाक्रौंच्चं में बिताकर तुम गिरिगोमंत क्षेत्र में पहुंचना। इस बीच अपनी बिखरी हुई सैन्य शक्ति को तुम सहेज भी सकोगे, उग्रसेन द्वारका भी पहुंच चुकेंगे। तुम्हारे महाक्रौंच्च में निवास के समय जरासंध तुम्हें खोज भी नहीं सकेगा।"

"जैसी आपकी सम्मति, ब्रह्मन् !" श्रीकृष्ण ने सहमति दी। परशुराम उनके साथ हो लिये।

यही किया था उन्होंने। वे महाक्रौंच्च जा पहुंचे थे। कुछेक विश्वसनीय यादव सैनिक, जो सदा श्रीकृष्ण-बलराम के साथ रहा करते थे, सुरक्षित

१. क्रौंच्चपुर या महाक्रौंच्च : 'महाभारत' के अनुसार महाक्रौंच्च, क्रौंच-द्वीप क्षेत्र है, जबकि कुछेक लोगों ने इसे दक्षिण दिशा का ही कोई छोटा राज्य कहा है। द्वीप का वर्णन जो मिलता है, उसके अनुसार वहां रत्नादि पाये जाते हैं। यह स्थान वर्तमान लक्ष-द्वीप में कोरा द्वीप हो सकता है। उल्लेखनीय है कि कोरा द्वीप से बहुत पास पणजी (गोआ) है जिसे महाभारत में गिरिगोमंत कहा गया है। इसके बहुत पास कोल्हापुर है, जिसे महाभारत में करवीरपुर कहते हुए स्वतंत्र राज्य बतलाया है तथा इसी करवीरपुर के राजा शृगाल से, जो जरासंध का मित्र भी था, श्रीकृष्ण का संघर्ष वर्णित है।

रूप से गिरिगोमंत क्षेत्र में भेज दिये गये। इन सभी सैनिकों को श्रीकृष्ण ने निर्देश दे दिया था कि वे यथाशीघ्र कुश हेमगुह से सम्पर्क साधकर उन्हें सूचना दे दें कि श्रीकृष्ण-बलराम तथा उद्धव महाक्रौंच्च में हैं। उपयुक्त समय पाकर हेमगुह उनसे भेंट कर लेगा।

समुद्र-तट के क्षेत्रों में पहुंचकर महाक्रौंच्च तक परशुराम ने सन्देश भिजवा दिया था, तुरंत भेंट करें।

राजा महाखग के पास तीव्रगति वायुयान था। वे गरुड़ जाति के क्षत्रिय थे और उनकी अपनी समाज-व्यवस्था थी, जो अनेक प्रकार से आर्यों से मेल न खाते हुए भी आर्यों से मिलती-जुलती थी। समाचार मिलते ही जनशून्य क्षेत्र में गुप्त रूप से अपने विमान को लेकर महाखग गरुड़ आ पहुंचे। रौद्रस्वभाव ऋषि परशुराम को प्रणाम करके उन्होंने श्रीकृष्ण, बलदेव तथा उद्धव का परिचय प्राप्त किया, फिर पूछा, "आदेश मुनीवर!"

परशुराम ने सारी स्थिति रखी। महाखग[1] अपने विमान पर उन तीनों को साथ लेकर महाक्रौंच्च जा पहुंचे। राजकीय स्वागत-सत्कार के बीच कुछ समय के लिए वे सभी निश्चिन्त हुए।

उधर जरासंध सह्याद्रि की पहाड़ियों से लेकर करवीरपुर और दक्षिण के दूर-दूरंत जनपदों में वसुदेव-सुतों को खोज रहा था। बौखलाये, उत्तेजित जरासंध की विशाल सेना हर वनप्रान्तर में बिखरी हुई थी। श्रीकृष्ण और बलराम के न मिल पाने ने उसे कुछ अधिक ही चिढ़ से भर दिया था। वह प्रतिहिंसा जो पुत्रियों के विधवा हो जाने से जनमी थी, निरंतर असफलता के कारण उग्र से उग्रतर होती जा रही थी। इस बीच कृष्ण के सम्पर्क निरंतर जुड़े थे।

ज्ञात हुआ था कि उग्रसेन, मथुरा के नर-नारियों सहित सुरक्षित

१. अनेक पुराणों और महाभारत में श्रीकृष्ण को गरुड़ पर वायु मार्ग से यात्रा करते वर्णित किया गया है। महाक्रौंच्च द्वीप के वर्णन में आया है कि वहां का राजा महाखग था। महाखग, गरुड़ को भी कहते हैं। कुछेक विद्वानों के मत में गरुड़ जाति है। गिरिगोमंत और करवीरपुर में हुए युद्धों में गरुड़ की सहायता से ही श्रीकृष्ण निकले थे।

कुशस्थली और प्रभास तीर्थ क्षेत्र में जा पहुंचे हैं। इस दौड़-भाग के कारण जरासंध की शक्ति, बहुत बिखरने लगी थी। एक दिन श्रीकृष्ण ने राजा महाखग से विदा मांगते हुए कहा था—"राजन्! हम लोगों को गिरिगोमंत पहुंचा दिया जाये।"

"किन्तु वासुदेव!" महाखग ने चिन्ता व्यक्त की—"मुझे ज्ञात हुआ है कि मगधराज जरासंध इस समय भी मह्याद्रि-क्षेत्र में उपस्थित हैं। उनके साथ चेदिनरेश शिशुपाल और करवीरपुर के राजा शृंगाल भी सहयोग कर रहे हैं। आपका वहां पहुंचना निरापद नहीं होगा।"

"जानता हूं, राजन्!" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया था—"किन्तु बहुत समय निष्क्रिय रहना भी तो उपयुक्त नहीं है। मेरे हजारों समर्थकों को मुझसे बहुतेक आशाएं हैं। उनके शुभार्थ मुझे वहां पहुंचना ही चाहिए। नीति भी है कि शत्रु जब मन-बुद्धि से असंयत होने लगे, तभी उस पर प्रहार करना उचित होता है। जरासन्ध की इस समय यही स्थिति है।"

महाखग चुप हो रहे। कहा था—"जैसी तुम्हारी इच्छा जनार्दन! पर मैं चाहता हूँ कि तुम मेरा तीव्रगति विमान गरुड़ अपने साथ रखो। आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग लाभकारी होगा। मेरी यह तुच्छ भेंट मैत्रीभाव से स्वीकार करो।"

क्रौंचराज की स्नेहिल भेंट लेकर वे गिरिगोमंत क्षेत्र की ओर वायु-मार्ग से चल पड़े। गरुड़ाकार तीव्रगति विमान ने उन्हें शीघ्र ही गिरिगोमंत के सघन जंगलों में सुरक्षित उतार दिया था। निश्चित स्थान पर विमान को रखा था उन्होंने। पहाड़ियों और गुफाओं से भरे ऐसे क्षेत्र में विमान छिपा दिया गया था, जहां सामान्य: किसी के आने-जाने या उसे देख पाने की आशंका नहीं थी, फिर तीनों तीव्रगति से समुद्र तट की ओर बढ़ चले थे। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र कुश नाविकों से भेंट करनी थी। उन्हीं के माध्यम से यह पता चल सकता था कि छोड़े गये यादव सैनिक कहां और उन्हीं से पता चल सकता था कि हेमगुह का जलयान किस तट पर खड़ा हुआ है।

अनुमान था उद्धव को। संभवतः बलभद्र और श्रीकृष्ण भी खूब जानते थे कि गिरिगोमंत क्षेत्र में मगध के गुप्तचर भी उतने ही सक्रिय होंगे, जितने राजा शृंगाल के हो सकते थे। सावधानी और सतर्कता की दृष्टि से उन सभी ने वेश बदल रखे थे; किन्तु इस सतर्कता को गुप्तचर न जानते हों, ऐसा नहीं था। निश्चय ही उन्हें भी अनुमान होगा कि कृष्ण, बलराम और उद्धव यदि उस क्षेत्र में कहीं हैं भी, तो वेश बदले हुए विचर रहे होंगे। उद्धव ने मार्ग में पूछा भी था—"कृष्ण! ···क्या यह दुस्साहस ठीक होगा?"

"दुस्साहस कौन-सा शब्द होता है उद्धव!" सहज भाव से प्रश्न के उत्तर में प्रश्न ही कर दिया था वासुदेव ने। शब्दचातुर्य की कला उनसे श्रेष्ठ किसे आती होगी! उद्धव कुछ बौखलाकर रह गये। कृष्ण बोले थे—"सत्य तो यह है उद्धव! दुस्साहस कुछ भी नहीं होता। अधर्म के हेतु, जो साहस व्यय किया जाये, दुस्साहस वही हो सकता है। सत्य और धर्म की रक्षा के लिये किया गया हर प्रयत्न भगीरथ की तरह श्रेष्ठ और साहसिक होता है और हम जो कर रहे हैं, धर्महित में ही कर रहे हैं उद्धव!"

उद्धव ने जिज्ञासा की थी—"हमारे इस तरह भागने, पणियों से छल करने, दासों को सहायता देकर अपरोक्ष रूप से सेवक या दास बनाने में धर्म कहां हुआ यशोदासुत! तनिक बतलाओ तो।"

बलभद्र उस समय तट-क्षेत्र पर पहुंचकर किसी ऐसे कुश नाविक को खोज रहे थे, जिस पर मन विश्वास करने को तैयार हो जाये, जिसके स्वभाव में गांभीर्य हो और उद्धव कृष्ण से प्रश्नोत्तरों में उलझ गये।

कृष्ण ने कहा था—"सुनो, मित्र! अपने कारण असंख्य नर-नारियों का संहार हो और स्वयं मूर्खतापूर्ण शौर्य दिखाकर आत्महत्या कर ली जाये, इसलिए भाग जाना धर्म है। धर्म का विचार कभी भी रुढ़ि से नहीं होता उद्धव! धर्म, विवेक से निश्चय करने और श्रेष्ठ के चुनाव की प्रक्रिया से निर्णीत होता है। पंचजनों ने व्यापारी के रूप में भरतखंड के भीतर आश्रय लेकर अपनी सत्ता फैलाने का उपक्रम किया था। सत्ता अनेक वार सत्ताधीश की संस्कृति और धर्म के प्रसार का कारण बन जाती है। ऐसे

अवसर पर छल से अपने शक्तिशाली शत्रु का नाश करना, उससे मुक्ति पाना सम्पूर्ण संस्कृति, देश तथा व्यवस्था के हित में धर्म है।" श्रीकृष्ण सहसा गंभीर हो गये थे। शब्द इस तरह झरते हुए, जैसे झरना झर रहा हो। सहज, सरल और निर्मल ! उद्धव उन्हें ऐसे देखने लगे थे, जैसे एक ज्योति का दर्शन कर रहे हों। मन के हर अन्धकार को ज्योतित करती तेजवान किरण !

श्रीकृष्ण पुनः बोले थे—"स्नेह और निष्कलुषता मनुष्य की ऐसी शक्तियां हैं उद्धव ! जिनसे बिना किसी अस्त्र के किसी को भी सेवक और दास बनाया जा सकता है, पर उसे दासता न कहकर यदि मित्रता कह दो तुम तब उसे सही नाम दे सकोगे !"

और उद्धव को लगा था कि उनके अपने भीतर से शब्द उमड़ आये हैं—हां-हां, तुम सच ही कहते हो कन्हैया ! तुम्हारे स्नेह और निर्मलता ने ही तो समूचे गोकुल के नर-नारी मित्रभाव में बांध लिये; पर बोल नहीं सके थे वह। कृष्ण पुनः सहज भाव से चल पड़े थे। बलभद्र ने आकर सूचना दी थी—"कृष्ण ! यहां से बहुत दूर है कुश हेमगुह ! उस तक सन्देश पहुंचा दिया है।"

"अच्छा किया भइया !" कृष्ण ने उत्तर दिया, पर उद्धव से सुना-अनसुना हो गया। जाने क्यों गोकुल-वृन्दावन के गोप-गोपियां स्मरण हो आये थे। मन भीगने-सा लगा था। यमुना की वह कल-कल करती स्वर लहरियां, उन पर झालरों जैसी झलकती प्रकाश किरणें और कृष्ण की बांसुरी ! मन हुआ था, कहें, कृष्ण ! बजा दो न। और कह भी डाला था।

कृष्ण बोले- —"बांसुरी तो बज रही है उद्धव ! आश्चर्य, तुम सुन नहीं पा रहे।" शब्द पूरे हों इसके पहले ही उद्धव को अनुभव था, जैसे कानों में वही स्वरलहरी गूंजने लगी है, जो कालिन्दी के कूल पर कितनी ही बार चपल कन्हैया ने बजायी है। स्वर और स्वर लहरियां, मधुर और मोह उपजाने वाली।

चलते-चलते तन अलस भाव में डूबने लगा था। मधुरता की मादकता में। फिर हल्की-सी ठोकर लगी। धुन भी टूट गयी, नशा भी।

कृष्ण हंस दिये। ऐसे जैसे कालिन्दी की लहरों ने एक-दूसरे को गुद-

गुदाया हो। होंठ बुदबुदा उठे—"यशोदानन्दन!"

कृष्ण चलते-चलते मुड़े, मुसकरा उठे। उद्धव को लगा था कि तपते रेगिस्तान जैसे मन पर पहली बरखा की शीतल फुहारें आ गिरी हैं। शान्त हुए। सहसा तट क्षेत्र से कुछ दूर कोलाहल उठा। अनेक स्त्री-पुरुष अन्धा-धुंध भागने लगे। उन्होंने थम कर देखा, क्या हुआ?

वे चीखते जा रहे थे—"आग! ···आग।···दावानल!"

आग? उन्होंने एक-दूसरे को देखा। तभी कुछ और लोग चीखते हुए निकले। तट-क्षेत्र पर लंगर डाले खड़ी नौकाओं और यात्री जलयानों पर गतिविधि बढ़ गयी थी। वे जल्दी-जल्दी नौकाओं के लंगर उठा रहे थे। समुद्र में दूर बढ़ने लगे थे।

कुछ बदहवास स्त्री-पुरुष इधर-से-उधर भागते हुए आग को लेकर टिप्पणियां करते चीखते गये।

"आग! दावानल नहीं, सैनिकों ने लगायी है वह आग?"

"क्यों?"

क्यों का कारण समझ आ गया था उन्हें। कोई बीच में रुका था। बलभद्र जल्दी से उसके पास जा खड़े हुए, पूछा—"क्यों भाई! सैनिक आग क्यों लगा रहे हैं?"

"कहते हैं गोमंत क्षेत्र में राजा जरासंध के कोई शत्रु आ पहुंचे हैं! उन्हें समाप्त करने के लिए ही यह आग···" आधे शब्द सुने, आधे नहीं! श्रीकृष्ण और उद्धव से भी कहने की आवश्यकता नहीं हुई। उद्धव ने उदास आवाज़ में कहा था—"यह सब हमारे कारण हो रहा है कृष्ण! न जाने कितनों को निरपराध ही मृत्यु के मुंह में जाना होगा! वह जरासंध बड़ा दुष्ट है।"

किन्तु उद्धव ने देखा, श्रीकृष्ण अविचलित भाव से समुद्र की ओर देखते रहे। ऐसे जैसे कुछ हुआ ही न हो, फिर बोले—"मेरे साथ आओ, उद्धव! "उत्तर से पूर्व वह उसी ओर दौड़ने लगे, जिस ओर आग के भय से लोग भाग खड़े हुए थे। उद्धव ने चेतावनी भी दी थी—"उधर तो आग है, मित्र!"

पर उन्होंने नहीं सुना। चकित उद्धव देखते ही रह गये थे। श्रीकृष्ण

वायुगति से दौड़े। दौड़ते हुए आगवाले वन में लुप्त हो गये। उद्धव और वलभद्र थके हुए से अब भी उसी दिशा में दौड़े जा रहे थे; पर उतनी गति नहीं थी। सहसा उन्होंने सैनिकों को भागते देखा। यह क्या हुआ?

जरासंध के सैनिक पागलों की तरह दौड़ते हुए उस ओर जा रहे थे, जिधर तट था। उन्हीं में वलभद्र ने श्रीकृष्ण को आते देखा।

पास आते हुए श्रीकृष्ण बड़बड़ाये थे—"चलो, शीघ्रता करो भइया!" वे सब विपरीत दिशा में सैनिकों के साथ-साथ दौड़े।

बहुतेक सैनिकों ने खोली जाती नौकाओं पर अधिकार कर लिया। श्रीकृष्ण वलभद्र और उद्धव ने भी यही किया। कुछ पलों बाद वे समुद्र में उतर गये। तेज और तेज नौका चलाते हुए।

अभी उद्धव प्रश्न करने ही वाले थे कि उन्होंने देखा, आग की लपटों से ढके वन में सहसा एक तूफान पैदा हो गया है। जल समुद्र से हिलोरें लेता हुआ उसी ओर बढ़ा जा रहा था। नौका चलाने में उन्हें कठिनाई होने लगी थी। अनेक विस्फोट हो रहे थे।

"यह···यह क्या हुआ वासुदेव!" उद्धव ने पूछा।

उत्तर कृष्ण से पहले वलभद्र ने दिया। हंसे, कहा—"देखते नहीं हो, वह जल किस दिशा में जा रहा है? उधर जरासन्ध का पड़ाव होगा, क्यों कृष्ण।"

कृष्ण ने उत्तर दिया था—"हां।"

"पर यह हुआ कैसे?"

श्रीकृष्ण ने हंसकर कहा—"तुम्हें संभवतः स्मरण नहीं है उद्धव! जब हम लोग गरुड़ पर सवार आ रहे थे, तब पहाड़ों के उसी क्षेत्र में जरासन्ध का पड़ाव था और वहीं जलयानों का इंधन रखा हुआ था। यह इंधन जिस क्षेत्र में रखा रहता था, वहां पणियों ने समुद्र को बांध रखा था। मैंने केवल इतना किया कि एक जलती मशाल उस इंधन पर फेंक दी और परिणाम तुम देख ही रहे हो।"

लपटें शान्त हो गयी थीं। समुद्र अब भी उफान लेता हुआ उस ओर आगे और आगे बढ़ा जा रहा था।

"पर यह जल···!" बलभद्र ने पूछना चाहा। श्रीकृष्ण ने कहा—"आप

निश्चिन्त रहें भइया ! यह जल उन पहाड़ी क्षेत्रों में ही प्रवेश करेगा, जिनके होंठों में जरासन्ध ने सैनिक पड़ाव डाल रखे हैं। समझना जरासन्ध की शक्ति नष्ट हुई ! अब वह यहां नहीं टिक सकेगा।"

और यही हुआ था। जरासन्ध के हजारों सैनिक मारे गये थे। बड़ी मात्रा में आयुध नष्ट हो चुके थे। गिरिगोमंत का जन-जीवन आग से प्रभावित होते-होते बच गया था और कई प्रहर बाद जब श्रीकृष्ण ने समुद्र में लम्बी यात्रा करने के बाद नौका को एक विशिष्ट क्षेत्र में पहुंचाया, तब ज्ञात हुआ था कि गिरिगोमंत क्षेत्र में क्या-क्या घटा।

उद्धव उस सब पर विश्वास करके भी विश्वास नहीं कर पाते हैं। पचासों बार सोचा है—कैसे ? किस तरह प्रकृति सदा श्रीकृष्ण की सहायक हो जाती है ? किस तरह वह अविश्वसनीय और अद्‌भुत सन्तुलन से शान्त रह लेते हैं ? कुछ भी अतिमानवीय और सहज नहीं लगता।···क्यों !

मन कहता है—"इसलिए कि श्रीकृष्ण ईश्वर हैं ! स्वयं ही प्रकति हैं। स्वयं ही घटित और स्वयं ही घटना !"

श्रीकृष्ण सारी रात्रि नौका चलाते रहे थे। साथ बलभद्र। उद्धव ने तो नींद के कितने झोंके लिये होंगे, याद नहीं है। बस, इतना याद है कि श्रीकृष्ण और बलभद्र ने जब उन्हें जगाया, तब वह किसी जलयान के पास थे। श्रीकृष्ण बोले थे—"जाओ मित्र ! हम लोग हेमगुह के जलयान पर पहुंच रहे हैं।"

उस समय नहीं सोचा था। चुपचाप अनुकरण करके जलयान के कक्ष में पहुंच गये थे। बाद में सोचा, यह कैसे संभव हुआ कि श्रीकृष्ण तट-क्षेत्र जाने बिना उसी जलयान पर पहुंचे, जो हेमगुह का था ? पूछा तो मुस्करा भर दिये थे श्रीकृष्ण। उत्तर के इस रहस्यमय फान ने उन्हें अधिक ही चिन्तित किया था। उससे अधिक चकित।

हेमगुह ने ही बतलाया था कि किस तरह गिरिगोमंत क्षेत्र में मगध-राज जरासन्ध की भारी सेना एक प्राकृतिक विपत्ति के कारण नष्ट हो गयी। वह वहां से कूच करने की आज्ञा शेष सेना को दे चुका है। करवीर-पुर के राजा से यदि खाद्यान्न की सहायता न मिलती, तो जरासन्ध की सेना को रास्ते में भूखे भी मरना पड़ता।

"और गिरिगोमंत का जन-जीवन ?"

"वह भी प्रकृति की अद्‌भुत लीला !" हेमगुह ने उत्तर दिया था—"जरासन्ध ने जो आग लगवायी थी, समुद्र के तूफान ने सहसा उसे समाप्त करके नागरिकों को बचा लिया।"

श्रीकृष्ण ने न दुख प्रकट किया, न प्रसन्नता। उद्धव चेहरा देख रहे थे उनका। अप्रभावित दृष्टि और समूचा व्यक्तित्व।

मन फिर प्रश्न बन गया—"कैसे ?...न दुख, न सुख ? क्या अनुभव-शेष हैं श्रीकृष्ण !"

और मन से ही उत्तर भी बरस पड़ा—"नहीं, श्रीकृष्ण केवल अनुभव हैं।"

बहुत कुछ रीत-बीत गया; किन्तु श्रीकृष्ण फिर भी शान्त नहीं। कुछ दिन बाद समाचार मिला था कि शिशुपाल बड़ी मात्रा में सेना लेकर जरासन्ध की सहायतार्थं गिरिगोमंत और प्रभासतीर्थ क्षेत्र में आया है। श्रीकृष्ण और बलभद्र की जोरों पर खोज चल रही है। कुश हेमगुह का गुप्तचर समाचार लाया था। यह भी कि पणि जिन-जिन क्षेत्रों में हैं, उन-उन क्षेत्रों में शिशुपाल को खोज में सहायता भी मिल रही है। हेमगुह चिन्तित था। बोला—"हमारा यान तो पणियों के क्षेत्र में ही है आर्य ! यदि वे इस यान पर आ पहुंचते हैं; तब बड़ी कठिनाई होगी।

श्रीकृष्ण ने कहा था—"हम चले जाते हैं हेमगुह ! मित्र को हम लोग संकट में नहीं डालना चाहते। तुम व्यापारी हो और तुम्हें हर क्षेत्र में व्यापार करना है। हम नहीं चाहते की हमारे कारण तुम्हारा व्यवसाय नष्ट हो जाये।"

बलभद्र और उद्धव ने भी समर्थन किया; किन्तु उठते हुए श्रीकृष्ण की बांह थाम ली थी हेमगुह ने। उसकी आंखें श्रद्धा और स्नेह से भरी हुई थीं, "नहीं मित्र ! जिन्होंने हमें सहायता दी है, स्वतंत्रता दिलायी है, उन्हें

इस तरह स्वार्थवश छोड़ना हमारा धर्म भी नहीं है। कुछ कठिनाई अवश्य होगी, पणि इस क्षेत्र में न होते तो वह भी न होती, किन्तु हम उसका सामना करेंगे आर्य ! आप कहीं नहीं जायेंगे।"

"किन्तु हेमगुह···!"

"अब मैं कुछ नहीं सूनूंगा, आर्य ! आप हमारे जलयान में ही रहेंगे। मेरे गुप्तचर निरंतर सूचनाएं देते रहेंगे। यदि कोई विपत्ति आयी, तो हमारा यान समुद्र में होगा। युद्ध हुआ तो वह भी समुद्र में ही होगा! "हेमगुह ने निश्चयात्मक स्वर में उत्तर दिया था। वे सभी कुछ कह नहीं सके।

और यही हुआ। हेमगुह को एक रात समाचार मिला—"पणियों ने शिशुपाल को सूचना दी है। श्रीकृष्ण और बलभद्र, जरासन्ध के शत्रु, कुशों के जलयान पर हैं।"

हेमगुह ने जलयान को समुद्र में छोड़ दिया।

और पणियों के कुछ छोटे-बड़े जलयान उसे घेरने के लिए समुद्र में बढ़ आये। एक लम्बी दौड़ चली थी यानों की। दूर, समुद्र की छाती पर वे सब घिर गये थे। हेमगुह ने युद्ध के लिए सैनिकों को तैयार किया था। श्रीकृष्ण अर्धरात्रि में चारों ओर से बढ़ते आ रहे पणियों के जलयान देखते रहे। सहसा बोले थे—"नहीं, हेमगुह ! युद्ध नहीं हो सकता। वे संख्या में बहुत हैं।"

"तब ?"

"तब कुछ नहीं। तुम हमें उनको सौंप दोगे। इस तरह सौंपोगे, जैसे तुम को हम लोगों ने बन्दी बना लिया था। बन्धक होने के कारण तुम्हारे सैनिक हमारे सामने बेबस होकर वही कर रहे थे, जो हम चाहते थे।"

"मैं···मैं समझ नहीं पाया आर्य ! आप क्या कहना चाहते हैं ?" हेमगुह नासमझ भाव से उन्हें देख रहा था। श्रीकृष्ण ने स्नेहपूर्वक उसके कन्धे पर हाथ रखा था, फिर कहा—"आओ, मैं समझाता हूं !"

और फिर जो कुछ, जिस तरह हुआ—सब विस्मित कर देनेवाला था ! ···त्वरितबुद्धि कृष्ण ! ···आश्चर्यजनक और असामान्य निर्णय-शक्ति से सम्पन्न वासुदेव ! ···

"न-न !···तुम मनुष्य नहीं हो कृष्ण !···मनुष्य तुम्हारी तरह होते ही नहीं !···" सैकड़ों बार श्रीकृष्ण से जुड़ी घटनाओं पर इसी तरह, यूंही बुदबुदाये हैं उद्धव !

समर्पण का सन्देश देता ध्वज हेमगुह के जलयान से उठा !···प्रकाश किया गया···अनेक बार किया गया और जलयान पूरी तरह घेर लिया पणियों ने। वे शस्त्रास्त्रों से सज्जित हेमगुह के यान पर आ पहुंचे। यान नायक के कक्ष में प्रवेश किया तो देखा "हेमगुह रस्सियों से जकड़ा बंधा पड़ा था। उसके पास ही शस्त्रास्त्रों से लदे हुए किसी भी क्षण हेमगुह की हत्या कर डालने के लिए तत्पर बलभद्र और उद्धव !

शिशुपाल की टुकड़ी का नायक कर्दम अपने पणि साथी को देखने लगा था, उन जलयानों का नेतृत्व कर रहा था—"यह···यह क्या हो रहा है, विशाक्ष ?" उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। हेमगुह के मुंह पर पट्टी बंधी थी—वह गंगुआया, इठा, तभी श्रीकृष्ण पास के छोटे कक्ष से मुसकराते हुए बाहर निकल आये—"जानना चाहते हो, पणिश्रेष्ठ !···तो सुनो, यह मूर्ख कुश अपने यान में हमें सहायता देने तैयार नहीं था। बाध्य होकर हमें इसे वश में करना पड़ा और इसे वश में करने का अर्थ था, इसके सम्पूर्ण जलयान और सैनिकों-सेवकों का वश में आ जाना !···"

"हूं···तो यह बात है !···" विशाक्ष ने घृणा से बलभद्र, श्रीकृष्ण और उद्धव को देखा, फिर शिशुपाल का नायक हंस पड़ा था— "अरे, मूर्खो !···ग्वालो ! क्या तुम अब भी यह समझ रहे हो कि यह तुम्हारा बन्धक है ?···इस जलयान पर ही नहीं, तुम पर भी हमारा अधिकार हो चुका है। खोलो इसे !···मुक्त कर दो !"

विशाक्ष कुछ सोचे, करे, इसके पहले ही पणि सैनिकों ने हेमगुह को बंधनमुक्त कर दिया। वह कांपता, कराहता उठा और बोला—"यह बड़े विश्वासघाती लोग हैं, विशाक्ष !···इन्होंने मुझे बाध्य कर दिया था कि

…ओह !" वह कराहने का भी अभिनय कर रहा था…

"इन तीनों को बांध दो !" विशाक्ष का आदेश हुआ, फिर उसने हेमगुह की पीठ थपथपायी। गौरव और अहंकार के साथ बोला—"हम व्यापार में प्रतिस्पर्धी हैं कुश ! …पर परस्पर मित्र हैं। आओ, मेरे साथ ! तुम्हें मुक्त करके मैं प्रसन्न हुआ।"

शिशुपाल के नायकों ने उन तीनों को बंधवा लिया था। वे कक्ष में बन्द कर दिये गये।

श्रीकृष्ण की योजनानुसार रात्रि देर तक उन्हें पकड़े जाने की खुशी में हेमगुह के जलयान पर विशाक्ष, कर्दम आदि का स्वागत किया गया। देर तक मद्यपान होता रहा फिर हलचल हुई…रात्रि के तीसरे प्रहर सशस्त्र कुश सैनिकों ने बन्दी कक्ष को पुनः खोला—श्रीकृष्ण बलभद्र और उद्धव मुक्त किये गये।

बाहर देखा—कर्दम, विशाक्ष और अन्य जलयानों के नायकों को ही नहीं, बड़ी मात्रा में पणि और शिशुपाल के सैनिकों को भी बन्दी बना लिया था कुशों ने। जिस समय समारोह हो रहा था, उस समय कुश सैनिक जहां-तहां दूसरे जलयानों पर भी आ जा रहे थे…पणियों के हर यान पर कुश सैनिक पहुंच चुके थे। उन्होंने अधिकतर को मदिरा पिलायी थी…कुछ बेसुध थे और कुछ जो थोड़ी-बहुत सुधि में थे, वे भी युद्ध करने की स्थिति में नहीं रहे थे। जिन्होंने विरोध किया था, उनमें से अधिकतर को समुद्र में समाधि दे दी गयी थी। सारे ही पणि जीवनरक्षा की भीख मांग रहे थे। विशाक्ष बहुत बहका था—"छल हुआ हमारे साथ।…योद्धाओं की तरह व्यवहार करो !"

श्रीकृष्ण ने कहा था—"तीन व्यक्तियों को बन्दी बनाने के लिए तीन सौ लोगों द्वारा घेरा जाना योद्धाओं जैसा व्यवहार होता है विशाक्ष ? …यह तुम पणियों से ही सीख रहा हूं…फिर देखता हूं कि तुम लोग व्यापारी भर न रहकर भरतखंड के राज्यों, राजाओं की नीति में भी हस्त-क्षेप कर रहे हो ! …पर मैंने निर्णय लिया है कि तुममें से किसी को दंडित नहीं किया जायेगा।…दंडित किया जाये तुम्हारे राजाओं को, जो यह सब करवा रहे हैं ! …"

उस समय उद्धव कुछ नहीं समझे थे कि श्रीकृष्ण क्या करना, क्या कहना चाहते हैं—समझ में उस समय आया था, जब सभी यानों को कुशस्थली ले जाया गया था···उन्हें पूर्ववत् पणि यानों के संकेतों से ही जुड़ा रहने दिया गया था। अन्तर केवल यह पड़ा था कि यानों के सभी सैनिक, विशाक्ष और कर्दम के साथी अक्रूर के बन्दी गृहों में भेज दिये गये थे—उनकी जगह जलयानों में पणि वेशभूषा पहने हुए यादव और कुश सैनिक समा गये थे—जब यानों का यह बड़ा समूह पुनः समुद्रयात्रा पर चला तो चकित मन उद्धव ने पूछ लिया था—"हम जा कहां रहे हैं केशव ?"

श्रीकृष्ण ने बतलाया था—"वैवस्वतपुरी !···सुनते हैं इन राक्षस पणियों का देश वही है···पाताल लोक की यमपुरी ! ···यम से भेंट कर ली जाये—यही विचार किया है मैंने !"

उद्धव का मुंह विस्मय से खुला रह गया था।

और उससे कहीं अधिक विस्मित हो रहे थे अर्जुन ! निस्सन्देह अविश्वसनीय साहस और दुर्लभ आत्मशक्ति की छोटी-छोटी अनेक कथाओं का संग्रह हैं श्रीकृष्ण !···

उद्धव ने कहा था—"अद्भुत थी वह पातालनगरी !···और उससे भी अद्भुत वहां के लोग। वे युद्धकुशल, क्रूर और विलासी प्रवृत्ति वाले थे। उनका राजा यम अमावस्या की कालरात्रि जैसा काला और विशाल शरीर वाला था।···अनेक दिनों की यात्रा के बाद जब पातालपुरी के उस विस्मय लोक में हमारे जलयानों ने प्रवेश किया तब वैवस्तपुरी में रात्रि थी। पर वह रात्रि भी कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था के कारण ऐसी लग रही थी जैसे छोटे-छोटे सूर्य उगे हुए हों। विशालाकार भवनों की उस नगरी का प्रतिबिम्ब जल से एक सुन्दर, कल्पना-चित्र जैसा लगता था धनंजय !···" बोलते-बोलते थमे थे उद्धव। अर्जुन को ऐसा लग रहा था जैसे वह उनसे कहीं, परे, दूर संभवतः उसी पातालपुरी में खो गये हैं···

"…वहां की स्त्रियां दीर्घकाय तो थी हीं, किन्तु पुरुषों की ही तरह बलशाली भी थीं।" उद्धव ने पुनः कहा था—"…विशाल समुद्र को चीरते हुए हमारे जलयान तट पर रुके ही थे कि श्रीकृष्ण की योजनानुसार वायुगति से यादव और कुश सैनिक उनसे निकले और उसी गति से यमपुरी के तटरक्षकों, सेवकों, बाजारों तथा भवनों पर अधिकार करने लगे… हेमगुह से बहुत सहायता मिली हम सभी को। वह अनेक बार उस क्षेत्र में आ चुका था। उसने बतलाया कि जब वह पणि यान नायक ओशिज का दास था, तब अनेक बार उसे बहुमूल्य सामान उतारने के लिए वैवस्वतपुरी के तट और नगर में जाने का अवसर मिला था…इस अवसर का उसने खूब लाभ उठाया था। वह उस राज्य के महत्वपूर्ण स्थानों और मार्गों से परिचित था।…वह रात्रि विचित्र-से सन्नाटे को तोड़ती हुई अनायास चीत्कारों और भयावह मार-काट से भर गयी थी…सूर्योदय से पूर्व वैवस्वतपुरी पर कुश और यादव सैनिकों ने अधिकार कर लिया था। यम पंच्चजन राक्षस बन्दी…नहीं बनाये जा सके। वे युद्ध करते हुए मारे गये। उसके बहुमूल्य रत्नादि, पान्च्जन्य शंख, कौस्तुभमणि तथा असंख्य सुन्दरियां हमारे अधिकार में आ गये। वहां के राजा को यम कहते हैं—धनंजय ! …वह मृत्यु का देवता होता है। वह इतना निर्मम है कि बन्दीगृहों में अधिक बन्दी रखना तक पसन्द नहीं करता—मृत्यु दंड देना उसके लिए सहज-सी बात है…यही नहीं, उस देश की अनेक विचित्र परम्पराएं भी हम लोगों ने देखीं। हमने देखा कि स्त्रियां केवल भोग्य वस्तु हैं और उनका उपयोग पणियों के समाज में इसी प्रकार होता है। हमने वहां की स्त्रियों को अर्धनग्न स्थिति में अनेक पुरुषों के साथ कामुक क्रीड़ाएं करते देखा। वे निर्लज्जतापूर्वक हंसती हैं। राजा जो निर्णय कर दे, वही धर्म होता है। राजा जो भी करे, वह सब धर्मानुकूल माना जाता है। यज्ञ, हवन आदि पर उनका तनिक भी विश्वास नहीं है। वे जीवन को काम, मदिरा और आनन्द भर की वस्तु समझते हैं। वे सूर्यपूजक हैं, किन्तु सूर्य की तरह सबको प्रकाशदान करने की मनोवृत्ति उनमें नहीं है। वे केवल अपने आपको प्रकाशित रखने में ही अपना धर्म और न्याय समझते हैं।…"

जब श्रीकृष्ण और बलभद्र की जय मिली तब वहां की स्त्रियों ने उन्हें घेर लिया और उन्हें तरह-तरह की कामुक चेष्टाओं से प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगीं। यही नहीं, पंच्चजन राक्षस की सुन्दरी पत्नियों ने आकर श्रीकृष्ण से कहा—"अब हम तुम्हारी सम्पत्ति हुईं, आर्य!... बतलाओ, हम तुम्हारा किस तरह शुभ करें? यह सुख, सम्पत्ति वैभव, हमारे शरीर सब तुम्हारे आनंद के लिए हैं।...इच्छा करो, क्या चाहते हो?"

श्रीकृष्ण ने मुसकराकर कहा—"देवियो!...तुम्हारे देश, धन-सम्पति और तुम्हें अधिकार में रखने की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं केवल यह स्मरण दिलाना चाहता हूं कि जिन देशों में तुम लोग व्यापार करते हो, वहां केवल व्यापारी रहो! उन्हें दास बनाने की चेष्टा कभी मत करो।...भरत खंड की समृद्ध पृथ्वी पर तुम्हारा स्वागत होगा, किन्तु मित्र की तरह—स्वामियों की तरह नहीं!..."

वे सभी आश्चर्य और अविश्वास से देखने लगे थे कृष्ण को! उतना सौन्दर्य, उतनी संपत्ति, वैभव को भला कोई इस तरह त्याग सकता है? जय किये हुए धन और नारी को ऐसे स्वतंत्र किया जा सकता है?

पर यही हुआ था। श्रीकृष्ण ने पंच्चजन के पुत्र को वहां का नया यम बनाकर विदा ली थी। वे सब उस विचित्र विजयी पर श्रद्धा कर उठे थे। उन्होंने तरह-तरह से श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना की...सभी को तट तक छोड़ने आये।...

नये बालक राजा यम ने जययान पर चढ़ने के पूर्व श्रीकृष्ण को आदर-पूर्वक अपने पिता की बहुमूल्य पंच्चजन शंख तथा कौस्तुभ मणि भेंट की—उनकी स्तुति की। श्रीकृष्ण ने उसे स्नेहाशीर्वाद दिया और सब लौट पड़े...

नये यम का राज्यादेश लेकर पातालपुरी के कुछ सैनिक साथ थे।... यह आदेश कुशपुरी लौटने के बाद राजा अक्रूर को सौंपा गया था। औशिज एवं अन्य सैकड़ों ही पणि सैनिकों, व्यापारियों और सेवकों को कारागृह से मुक्त करते हुए नये राजा को आदेश सुना दिया था...उन्हें सूचित कर दिया गया था कि श्रीकृष्ण पंच्चजन का वध कर चुके हैं और अब वहां

पंच्चजन का पुत्र नया यम है।

वे सभी कृष्ण के प्रति आभारी ही नहीं हुए थे—एक तरह से उनके अनुयायी और भक्त हो गये थे।

वैवस्वतपुरी की जय ने श्रीकृष्ण की सर्व-शक्ति सम्पन्नता स्वीकार करवा ली थी। मित्रभाव से शिशुपाल आ खड़ा हुआ था उनके सामने और श्रीकृष्ण ने अपने मौसेरे भाई को गले लगाकर उसका स्वागत किया था। भरत-खंड के समुद्र-तट पर व्यापार निरंतर चलता रहा था, किन्तु वे षड्यंत्र और संघर्ष बन्द हो चुके थे जो सदा युद्धों में बदलते रहते थे। जिनके कारण सागर तट का भरत-खंड सदा ही अशान्तिपूर्ण रहा था।

उस दिन जब उद्धव ने वापसी में कहा था—"अर्जुन !···श्रीकृष्ण ने अनेक राज्य जय किये हैं, बहुतेक दैत्य-दानवों का संहार किया है। दासों को मुक्ति दिलायी है। उन्हें भक्तिभाव से लाखों ने स्वीकार किया है··· पर श्रीकृष्ण पूर्ववत् श्रीकृष्ण ही हैं—क्या यह कम विस्मय की बात नहीं है ?"

वे तीव्रगति रथ से द्वारका की ओर वापस जा रहे थे। अर्जुन को जितना कुछ जानने की, तर्क करने की इच्छा थी—शान्त हो गयी थी। पर श्रीकृष्ण भगवान् हैं—साक्षात् ब्रह्म हैं—यह स्वीकारने मन फिर भी तैयार नहीं। अब कौन-सा संशय शेष रहा ?···यह भी समझ से परे।

इसी संशय को उद्धव ने मार्ग में हिला डाला था—"बतलाओ तो धनंजय !···कौन है ऐसा जो सब जय करे और सब छोड़ दे ?···जो राजाओं से राज्य जीते और किसी अन्य को वह राज सौंप दे ?···जो बालपन में असंख्य मित्रों और गोपियों का श्वास रहा हो, वह परमस्नेह करते हुए भी उनसे बिलग रह ले ?···जो किसी भी विपत्ति में केवल शक्ति रहे ?···जो न्याय के लिए अथकित और निरंतर संघर्ष कर सके ?···जिसे जय से सुख न हो, पराजय से पीड़ा न उपजे ?···जिसे नेह बांध न सके,

और जिसे नेह छुड़ा न सके ?···कभी-कभी तो मुझे लगता है कुन्तीसुत—श्रीकृष्ण व्यक्ति नहीं हैं, विचार है। वे साधक नहीं हैं, स्वयं साधना हैं।"

श्रीकृष्ण साधक नहीं हैं—साधना हैं !···

और कृष्ण व्यक्ति नहीं है—विचार हैं !···

कितने लम्बे समय तक यही उहापोह घेरे रही थी अर्जुन को। लगता था कि जितना-जितना जानने की चेष्टा करते हैं, उतने-उतने अजाने होते जाते हैं कृष्ण। सुभद्रा का हरण करवाकर स्वयं ही जैसे गुत्थी बन गये थे वह। और उस गुत्थी को सहजता से हल करके उस हरण को परिणय-संस्कार में बदल दिया था उन्होंने। वे सम्बन्धी से अधिक गहन सम्बन्ध में जकड़ गये थे···

या उन्होंने ही जकड़ लिया था पांडुपुत्रों को ?···अर्जुन कब, किस अजाने पल उनके प्रति श्रद्धालु हुए थे—ज्ञात नहीं। बहुतेक घटनाएं जुड़ी हैं उनके साथ में। द्रौपदी के स्मरण मात्र से श्रीकृष्ण ने वह आत्मशक्ति दे डाली थी द्रौपदी को, जिसने दुःशासन की कुचेष्टा को व्यर्थ किया !···वही तो हैं, जिन्होंने उस दिन राजा युधिष्ठिर को ज्ञान समझाया था···

अर्जुन कभी भूल न सकेंगे वह दिन···और उस दिन की बात ! वह बात, जिसने श्रीकृष्ण को उस व्यापकता के साथ व्यक्त किया था···अर्जुन श्रद्धालु हो उठे थे।

इन्द्रप्रस्थ आये थे श्रीकृष्ण। राजसूय-यज्ञ की वेला। जरासन्ध आतंक की तरह समूचे भरतखंड में कालरात्रि बना हुआ था। श्रीकृष्ण की बढ़ चुकी शक्ति और प्रभाव ने उसे और बौखला दिया था। सत्ता-प्राप्ति की अन्धी दौड़ में उसने ८६ राजा बन्दी बना लिये थे। सूचनाएं मिल रही थीं कि कुछेक अन्य राजाओं को बन्दी करने के बाद वह उनकी सामूहिक हत्या कर डालेगा !···इस तरह वह एक मदांध राजसत्ता का अधीश्वर बनना चाहता था···

विचारविमर्श में श्रीकृष्ण ने कहा था—"राजन ! ···देखता हूं कि भरतखंड विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों और सत्ताओं में विभाजित है।···मैं यह भी निरंतर देख रहा हूं कि सत्ता और मोह की यह भूख समय-असमय निर्दोष जन-जीवन के लिए घातक और संहारक बनती रही है।···न्याय, धर्म और व्यवस्था की दृष्टि से हीन होकर केवल सत्ता प्राप्त करने की यह इच्छा भरतखंड का नाश कर डालेगी ! ऐसी स्थिति का मुझे तो केवल एक उपचार सूझता है···और वह है—भरतखंड में किसी एक न्यायपूर्ण सत्ता और सम्राट की स्थापना···सभी राज्य उसे स्वीकारें, उसकी देख-रेख में धर्मपूर्वक समाज-व्यवस्था हो, राज्य चले।···वे सुरक्षित रहें, युद्ध-भय से परे होकर जनांचलों में शान्ति और समृद्धि फैले···"

पांडव बन्धु इस तरह देखते और सुनते रहे थे जैसे किसी धर्म-श्लोक को सुन रहे हों···और श्रीकृष्ण उन्हें मंत्रमुग्ध करते हुए उसी तरह कहते गये—"और उस दृष्टि से जब मैं विचार करता हूं तब आपके अतिरिक्त मुझे अन्य कोई व्यक्ति सम्राट होने योग्य नहीं दीखता···आपमें वे सभी गुण हैं कुन्तीपुत्र जो किसी भी जाति-वंश-राज्य के लिए चाहिएं ! ··आप सत्य के प्रति समर्पित हैं। धर्म में आपकी गति है। ज्ञान आपकी शक्ति··· आपका सम्राट होना आवश्यक है राजन् !···और वह होना ही चाहिए ! ···"

अर्जुन ने सुना था—होंठ हौले से भींच लिये। दृष्टि में श्रद्धा उतर आयी। श्रीकृष्ण शान्त थे—सहज। सदा की तरह मुसकराते हुए···

व्यापक ! ···नहीं—सीमाहीन ! ···संभवतः यह शब्द भी वासुदेव के लिए उपयुक्त नहीं।

उपयुक्त है—अनंत !

और फिर अर्जुन ने एक नयी यात्रा प्रारंभ की थी। इस बार अनंत को पाने की यात्रा ! किसी बार श्रीकृष्ण सखा को देखते, किसी बार उनके

शब्दों की तहों में खो जाते, कभी मन करता—श्रीकृष्ण को मनुष्य की तरह समझो। कभी इच्छा होती—श्रीकृष्ण की नीति समझें।

पर लगता कि व्यक्तित्व की जिस गहराई में उतर आते हैं—उसकी थाह नहीं मिलती। ऐसे प्रयत्न अजब-सा बोध देते हैं उन्हें। कभी लगता है कि आकाश में उड़ान भर रहे हैं—और पंछी की तरह थकने लगे हैं। कभी लगता है कि पाताल तल में उतरकर एक नये लोक में जा पहुंचे हैं। यह लोक भी आदि-अन्त से हीन। पृथ्वी पर खड़े होकर वायु में स्वर की तरह गूंजने लगे हैं—"कृष्ण! ···क्या तुम वहां भी हो?" और अपना ही स्वर सुनते रहते हैं··

कैसी विचित्र स्थिति है यह? पलक झपकी तो कृष्ण दीखते हैं। पलक खुले भी कृष्ण। श्वास लेते हैं तो कृष्ण का अनुभव होता है, श्वास उगलते हुए भी कृष्ण का गुंजन! यह क्या हो गया है उन्हें? हमें लगता है हर बार कि कृष्ण उनके पास खड़े गीता सुनाने से पूर्व की मुद्रा में स्नेहपूर्ण पुकार उछालते हैं—"पार्थ! ···"

कैसा हो गया है मन! ···कृष्ण! ···कृष्ण! कृष्ण! ···प्रश्न भी कृष्ण—और उत्तर भी कृष्ण।

०००

आगामी मास की पुस्तकें

साहित्यिक बुक क्लब

एक लड़की की डायरी / शानी	:	6.00
उस पार का अंधेरा / सुदर्शन नारंग	:	6.00
खूनी कोठी / मेजर बलवंत	:	8.00
मधुशाला चयनिका / बच्चन (पुस्तिका)	:	मुफ़्त

मनोरंजन बुक क्लब

कांटों का गजरा / सरला रानू	:	6.00
दिल का दाग़ / विकास	:	6.00
खूनी कोठी / मेजर बलवंत	:	8.00
मधुशाला चयनिका / बच्चन (पुस्तिका)	:	मुफ़्त

अनन्त

रामकुमार 'भ्रमर'

■ श्रीकृष्ण का जीवन बहुत चमत्कारों से भरा
और घटनाप्रधान है; लेकिन लेखक ने
इस बारहवें खण्ड में
उनके कर्मयोगी जीवन को ही छुआ है।
वह भी केवल उतना ही, जिसका सम्बन्ध
महाभारत - कथा के बीच कौरव - पाण्डवों से बनता है।

■ श्रीकृष्ण निरंतर पाण्डवों के पक्षधर ही नहीं,
उनके दूत भी बने रहे।
यह वह कर्मशील/ज्ञानी समय - पुरुष थे,
जिन्हें उनके जीवनकाल में ही
भगवान् के रूप में मान लिया गया था।

■ श्रीकृष्ण ही वह प्रज्ञा - पुरुष है, जिन्होंने
कुरुक्षेत्र युद्ध में अर्जुन को
गीता का उपदेश दिया था
और जिसमें समय की शिला पर
खरा उतरने वाला
जीवन दर्शन समाहित है।

■ उन्हीं आदि अन्त से हीन भगवान् श्रीकृष्ण
की यह महागाथा श्रद्धालु पाठकों
के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी

□ उपन्यास क्रम □

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स

8/-